ISSN : 0972-2351

सी एम एफ आर आइ विशेष प्रकाशन, संख्या 73

मत्स्यगंधा

2001

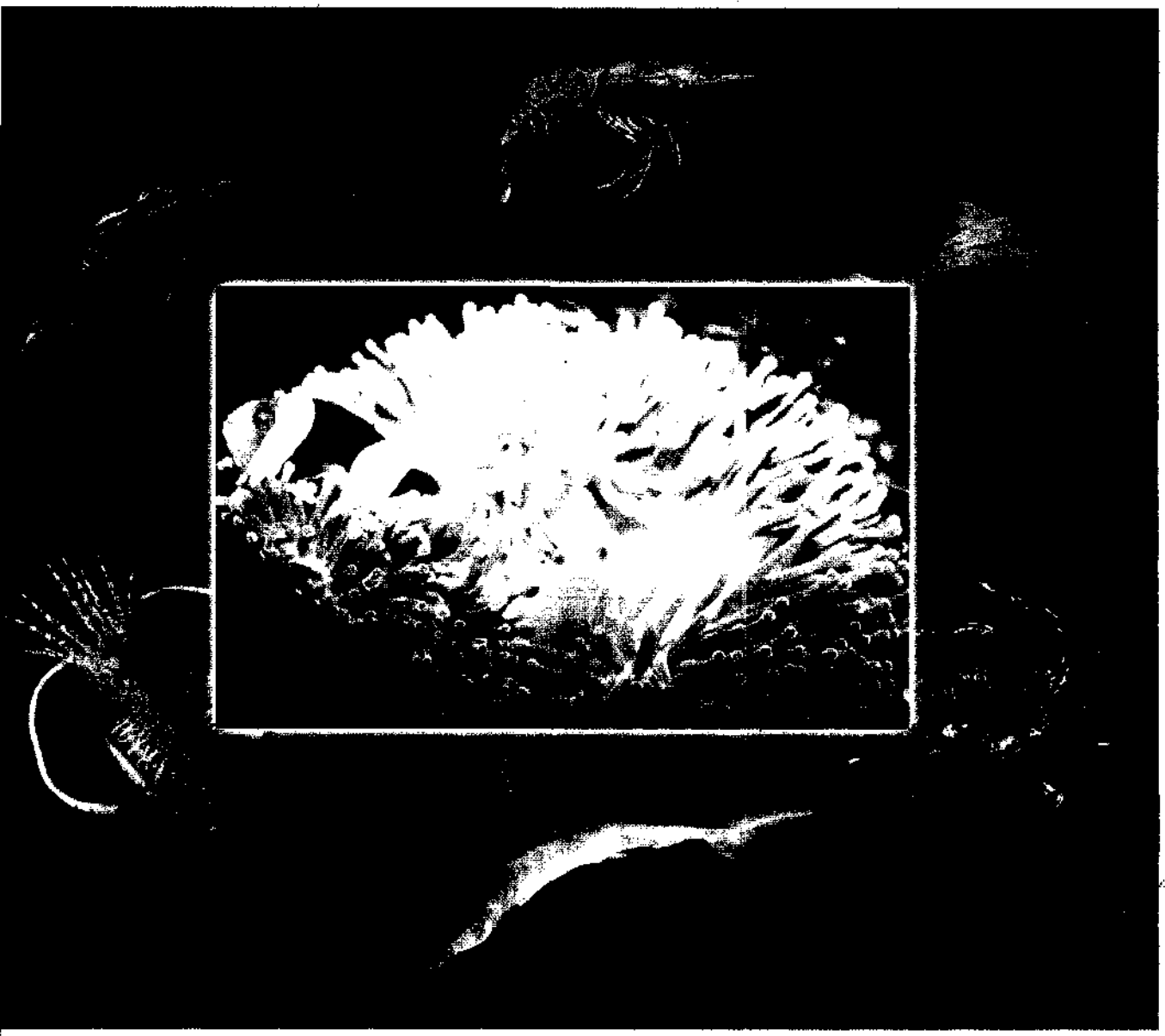

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
डाक संख्या 1603, टाटापुरम डाक, कोचीन 682 014, भारत
सितंबर 2002

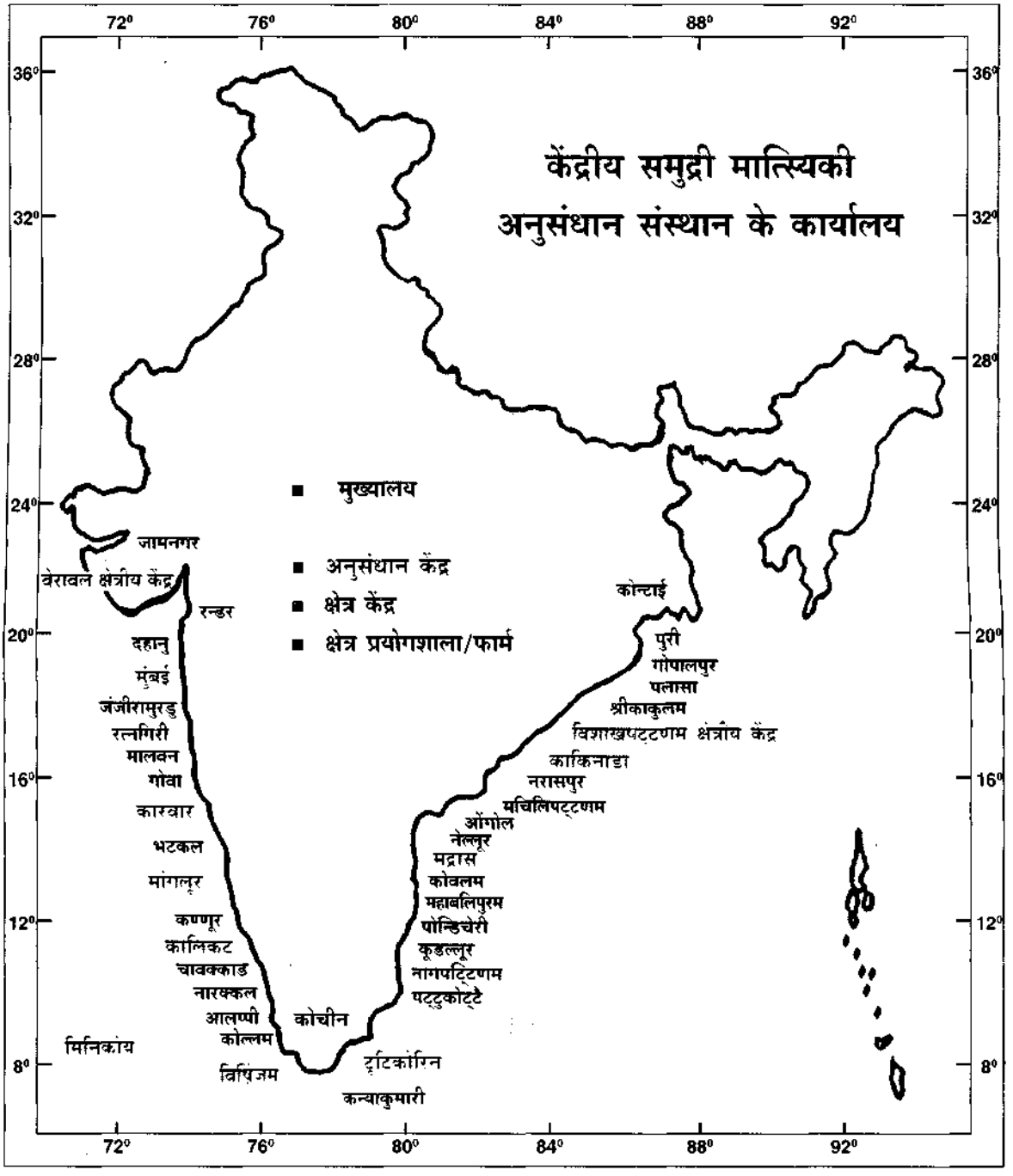
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी
अनुसंधान संस्थान के कार्यालय
मुख्यालय
अनुसंधान केंद्र
क्षेत्र केंद्र
क्षेत्र प्रयोगशाला/फार्म
72°
76°
80°
84°
88°
92°
36°
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8°
जामनगर
वेरावल क्षेत्रीय केंद्र
रन्डर
दहानु
मुंबई
जंजीरामुरडु
रत्नगिरी
मालवन
गोवा
कारवार
भटकल
मांगलूर
कण्णूर
कालिकट
चावक्काड
नारक्कल
आलप्पी
कोल्लम
त्रिविंजम
मिनिकोय
कोचीन
टूटिकोरिन
कन्याकुमारी
कोन्टाई
पुरी
गोपालपुर
पलासा
श्रीकाकुलम
विशाखपट्टणम क्षेत्रीय केंद्र
काकिनाडा
नरासपुर
मचिलिपट्टणम
ओंगोल
नेल्लूर
मद्रास
कोवलम
महाबलिपुरम
पोन्डिचेरी
कूडल्लूर
नागपट्टिणम
पट्टुकोट्टै

सी एम एफ आर आइ विशेष प्रकाशन
संख्या 73

मत्स्यगंधा

2001

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
डाक संख्या 1603, टाटापुरम डाक,
कोचीन 682 014, भारत

सितंबर 2002

प्रबंध-संपादक

डॉ मोहन जोसफ माडयिल

निदेशक
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन

संपादकीय मंडल

डॉ एम. श्रीनाथ	-	मुख्य संपादक
श्री एम. ज़ाफ़र खान	-	सदस्य
डॉ नारायण कुमार	-	सदस्य
डॉ चन्द्रकांत पंडित तायडे	-	सदस्य
श्री चार्ल्स एक्का	-	सदस्य
श्री के.के. बालसुब्रमण्यन	-	सदस्य
श्री सुब्रमण्य भट	-	सदस्य
श्रीमती शीला पी.जे.	-	सदस्य-सचिवा

सहयोग
ई.के. उमा
ई. शशिकला
सी.ए. लीला

मुद्रण : सितंबर - 2002

प्राक्कथन

मत्स्यगंधा का यह दूसरा अंक आपके सामने पेश करने में मुझे अत्यंत संतोष है। जब मत्स्यगंधा 2000 का पहला अंक निकाला था तब मुझे संदेह था कि इसका अगला अंक निकाला जा सकेगा या नहीं। पहले अंक पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं ने मेरी आशंकाओं को निरर्थक कर दिया; इस से ताकत अपनाते हुए अब यह दूसरा अंक निकाला जा रहा है। अतः आगे से मत्स्यगंधा एक नियमित प्रकाशन होगा जो कि राजभाषा हिंदी में देश की मात्स्यिकी सूचनाओं का विकीर्णन करने का एक अर्थपूर्ण प्रयास हो जाए, यही मेरी कामना है।

भारत में कृषि की परंपरा जितनी पुरानी है उतनी मात्स्यिकी की भी। इस परंपरा को आगे बढानेवाली और नवनीकरण करनेवाली कई प्रौद्योगिकियों के विकास से देश के खाद्य उत्पादन में मात्स्यिकी अपनी अहं भूमिका निभा रही है। कृषि के अन्य उपजों के समान मात्स्यिकी भी सिर्फ उपजीवन का मार्ग न रहकर आर्थिक कमाई का स्रोत बन गया है। यह हमारे अनुसंधान और विकासात्मक प्रयत्नों से हो पाया है। इन लक्ष्यों को साकार करने में परिषद के प्रकाशन अहं भूमिका निभा रहे हैं। हाल ही में माननीय कृषि मंत्री श्री अजित सिंहजी ने इस बात का उल्लेख करते हुए बताया था कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एशिया का सब से बडा कृषि प्रकाशक है जहाँ से हर तीसरे दिन औसतन एक प्रकाशन निकाला जा रहा है। यह सब होते हुए भी हमारे वैज्ञानिक संस्थाओं की सिर्फ चालीस प्रतिशत सूचनाएं प्रसरित कर पाई है। इस प्रसंग में वैज्ञानिक और शिक्षा संस्थाओं में उपयोग की जानेवाली भाषा का सांगत्य उभरकर आता है। इस अवबोध ने संस्थाओं में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने का तात्पर्य और अवबोध जगाया है। इससे प्रेरणा पाकर मात्स्यिकी समाचारों को राजभाषा हिंदी में कृषि सूचनाओं की राष्ट्रीय कडी में जोडने के विनीत उद्देश्य से हम मत्स्यगंधा 2001 निकाले जा रहे हैं हमारा कदम जितना भी छोटा हो राजभाषा हिंदी में अपने विषय अभिव्यक्त करने को वचनबद्ध सारे कार्मिकों को इस से प्रेरणा और प्रयोजन मिल जायेगा इस में संदेह नहीं। इस लक्ष्य को साकार करने में मेरी मदद किए प्रत्येक लेखक के प्रति मैं विशेष आभारी हूँ। मंजिलों तक पहुँचने को अथक परिश्रम और अर्पणबोध चाहिए, इसके पीछे काम किए संस्थान के राजभाषा अनुभाग के कार्मिकों को मेरी ओर से बधाई हो।

(मोहन जोसफ मोडयिल)

निदेशक, केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान

कोचीन

सितंबर, 2002

संपादकीय

मत्स्यगंधा के इस अंक में मात्स्यिकी के विभिन्न पहलुओं से जुडे विषयों के 22 लेख सम्मिलित किए गए हैं। मूल रूप में हिंदी में रचित लेखों के लिए की गई हमारी मांग की प्रतिक्रिया इतनी प्रोत्साहजनक और प्रेरणादायक थी कि अधिकांश लेख हमें हिंदी में लिखे हुए प्राप्त हुए थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकांश लेखों का योगदान अहिंदी भाषी लेखकों से हुआ था।

प्रग्रहण मात्स्यिकी से मछली उत्पादन बढाने की संभावनाएं और खाद्यपूर्ति के लिए संवर्धन एवं पालन मात्स्यिकी की साध्यताएं मंद दीख पड जानेवाले हाल के संदर्भ में अनुसंधेताओं का ध्यान संवर्धन या पालन मात्स्यिकी की ओर मुड जाना स्वाभाविक है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें आधिकांश लेख पालन मात्स्यिकी से जुडे विषयों पर प्राप्त हुए थे इसलिए हमने इस प्रकाशन का प्रारंभ पालन विषयों से किया है; संपदा, पर्यावरण, मानव संसाधन, समाज एवं संगठन के क्रम में अन्य विषयों को क्रमबद्ध भी किया है। पाठकों की प्रतिक्रियायें और संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन की झलक अंत में जोडी गयी हैं।

अब भाषिक पहलुओं पर दो शब्द। जैसा कि आपको मालूम है हिंदी में मात्स्यिकी का वैज्ञानिक साहित्य अपनी शैशवावस्था पार कर रही है। मात्स्यिकी वैज्ञानिकों, प्रबंधकों और आयोजकों की समझ की भाषा के रूप में इसे विकसित किए जाने को इसकी संरचना और शब्दावली पहलुओं पर कई विचार और कोशिश किए जाने को हैं। जहाँ तक हो सके संपादन में हमने हिंदी भाषा के विकास केलिए नियत तत्वों के अनुसार तकनीकी शब्दों में सुतार्यता और अभिव्यक्ति में स्पष्टता बरतने का प्रयास किया है।

मत्स्यगंधा का यह अंक आपके सम्मुख प्रस्तुत करने में हमें बेहद खुशी है और इसके आगे की प्रगति केलिए आपके विचार और मूल्यवान सुझाव प्रार्थित है।

एम. श्रीनाथ

कोचीन
सितंबर, 2002

एम. श्रीनाथ
मुख्य संपादक

अनुक्रमणिका

पालन	भारतीय जलकृषि में उपयोग करनेवाले सूत्रित खाद्यों पर मौलिक अनुसंधान क्यों ?	1
	झींगा पालन में फैले रोग तथा निदान	6
	कॉमन कार्प (सिप्रनस कार्पियो) मछलियों में प्रजनन तथा अधिक बीज उत्पादन	10
	समुद्री मोती संवर्धन तकनीक	14
	विभिन्न अवस्था के झींगों और मछलियों को खिलाने के लिए बड़ी मात्रा में जीवित खाद्यों का संवर्धन	17
	सिंचाई व्यवस्थाओं के साथ मछली पालन का एकीकरण - एक नया व्यवस्थित दृष्टिकोण	19
	जल जंतु पालन में पोषण	25
	हरियाणा में मत्स्य पालन की प्रगति व सम्भावनाएं	27
संपदा	भारत की उपास्थिमीन मात्स्यिकी	30
	गहरे समुद्र की अपारंपरिक मत्स्य संपत्ति	35
	सौराष्ट्र के प्रमुख मत्स्य अवतरण केन्द्र	37
	महाराष्ट्र की गोल्डन ऐंचोवी मात्स्यिकी	41
	रीफ जंगल का शेर : भारतीय लायन फिश	44
पर्यावरण	पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण	46
	अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी जल संसाधन - वर्तमान अवस्था तथा सम्भावनाएं	52
	नदी प्रवाह और तटीय उत्पादकता	57
मानव संसाधन	नीली क्रांति में मानव संसाधन विकास की भूमिका	60
समाज	मिनिकॉय की जीवनशैली के कुछ पहलू	65
संगठन	राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केंद्र-एक परिचय	68
	केन्द्रीय खारापानी जलजन्तु पालन संस्थान की शोध उपलब्धियाँ	73
	भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण - एक झलक	77
	मत्स्य विद्याशाखा, रत्नागिरी	80
प्रतिक्रिया	प्रतिक्रियाओं से	83

भारतीय जलकृषि में उपयोग करनेवाले सूत्रित खाद्यों पर मौलिक अनुसंधान क्यों ?

प्रो. डॉ. मोहन जोसफ मोडयिल
निदेशक, केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन, केरल.

आमुख

हाल के संदर्भ में भारतीय जलकृषि तेज़ परिवर्तनों और चुनौत्तियों का सामना कर रही है। यह मछली कृषकों, वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकी वैज्ञानिकों, परिस्थिति वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और अन्य पणधारियों को पहल और परिचिंतन का विषय बन गया है। भारतीय कृषि में जलकृषि लगभग 7% वृद्धि दर दिखाती हुई तेज से आगे बढ रही है। बीते गये वर्षों में हमारे वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गयी समुद्र कृषि प्रौद्योगिकियों से जलकृषि उत्पादन में देश बहुत आगे बढ़ गऐ हैं। भौगोलिक जलकृषि विकास में एशिया महाद्वीप पहले ही अग्रवर्ती रहा है और आज के भौगोलिक जलकृषि पैदावार में लगभग 85% इसका योगदान है। भारत में जलकृषि द्वारा दो मिलियन टन मछली का उत्पादन होता है जबकि कुल उत्पादन करीबन 5.4 मिलियन टन है। आगामी वर्षों में मछली की माँग बढने की ही संभावना है। घरेलू उत्पादन का आकलन करें तो वर्ष 2020 होते-होते हमारी माँग लगभग 9.5 मिलियन टन मछली तक बढ जायेगी। अत: आगामी वर्षों में मांग-पूर्ति केलिए देश को मछली उत्पादन दुगुना करना चाहिए। प्रौद्योगिकी, निवेश और नीति संबंधित मामलों में आवश्यक सहारा प्रदान करते हुए इस क्षेत्र में कदम-कदम आगे बढ़ाने का हर संभव कोशिश हम कर रहे है।

जलकृषि में कम मूल्य पर उचित खाद्य की उपलब्धि जितना महत्वपूर्ण है उतना कोई अन्य विषय का नहीं है, क्यों कि एक जलकृषि उद्यम के प्रचालन व्यय में 60% खाद्य संघटकों केलिए होता है। वर्द्धित उत्पादन केलिए विस्तृत पालन प्रणाली से अर्ध-तीव्र और तीव्र पालन प्रणालियों की ओर बदल जाने के हाल के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण बन जाता है। सूत्रित खाद्य अपनी उत्कृष्ट खाद्य रूपांतरण दक्षता और उच्च उत्पादन क्षमता के कारण जलकृषि पालन केलिए अनुयोज्य मानी गई है। यह ही नहीं उच्च अतिजीवितता, बढती, रोधक्षमता, पोषण सुरक्षा जैसे लक्ष्यों को भी साकार करने में सहायक है। भारतीय अन्त: स्थलीय जलकृषि की वर्तमान विस्तृति 5,00,000 हेक्टर से ऊपर है जो यह सूचित करता है कि प्रति हेक्टर 2 टन खाद्य की दर पर हमारी वार्षिक माँग अब 1 मिलियन टन है, अभी हमारे फैक्टरियों में 78,000 टन, आन्ध्रप्रदेश घरेलू उद्योग में 20,000 टन और अन्य राज्यों में थोडी मात्राओं में खाद्य का उत्पादन होता है। यह हमारी माँग पूर्ति केलिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार सूत्रित और संतुलित खाद्यों का उत्पादन बढाना अत्यधिक अनिवार्य है, पर कृषकों की माँग के अनुसार यह खाद्य कम लागत का और उच्च गुणता का भी होना चाहिए

मछली खाद्य पर अनुसंधान की आवश्यकता

मछलियों के प्राकृतिक आवास खाद्य पदार्थों से समृद्ध है और मछली उत्पादन में आहार की उपलब्धता और वितरण से सीधा संबंध है, लेकिन जलकृषि में बढती और उत्पादकता सुनिश्चित करने केलिए पूरक खाद्य अनिवार्य है। यद्यपि प्राकृतिक आवासों को उर्वरकों के प्रयोग से एक हद तक उपजाऊ बनाये जा सकते है तथापि अर्ध-तीव्र और तीव्र पालन प्रणालियों में यह पूर्णत: स्वीकार्य नहीं है; इसकेलिए पूरक खाद्य बहुत ज़रूरी है। गत 25 सालों के दौरान मछली

पोषण विज्ञान ने तेज़ प्रगति प्राप्त की है और आज हम अधिकतर पालनयोग्य जातियों के आहार में पोषण संबंधी आवश्यकताएं समझने एवं सूत्रबद्ध खाद्य के उत्पादन केलिए प्रौद्योगिकियाँ विकसित करने में सक्षम बन गए हैं।

मछलियों के पोषण की आवश्यकता एक जाति से दूसरी जाति के बीच, एक मौसम से दूसरे मौसम के बीच और जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के बीच बदलती रहती है। अतः एक सूत्रित खाद्य जो एक प्रत्येक जाति के सारे के सारे पोषकीय आवश्यकताओं को निभाता है किसी अन्य समान जाति या उसके ही जीवन चक्र केलिए अनुयोज्य होना जरूरी नहीं है। पालन कुण्डों में आहार का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने केलिए गुटिका रूपी आहार का रूप, मृदुलता और कठोरता, जल स्थिरता जैसे बाह्य गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक प्रत्येक जाति केलिए खाद्य रूपायित करते वक्त इसके पाचक एनज़ाइम और पचन शक्ति का ज्ञान होना अनिवार्य है। यह अनिवार्य नहीं है कि, पोषण की दृष्टि से संतुलित किया एक खाद्य मछली की अनुकूल कायिक बढती प्रदान करने में सक्षम हो, क्योंकि खाद्य के घटकों का विघटन करने लायक एनज़ाइम मछली में नहीं हो सकता है। मूल्य कम करने और अच्छी बढ़ती सुनिश्चित करने केलिए खाद्य रूपांतरण दक्षता बहुत ही महत्वपूर्ण है। फिर भी खाद्य में प्रोटीन की आपूर्ति केलिए सस्ते प्रोटीन स्रोतों का चयन वांछनीय नहीं है। ग्रीष्मकाल केलिए आदर्श खाद्य शीत काल में ऊतकों में वसा बढाने वाला हो सकता है। ऊतकों में वसा का आधिक्य मांस की गुणता को कम कर सकती है। इसके अलावा वसा के जमाव से दुर्गन्ध और तद्वारा मछली के जीवनकाल में कमी आ सकती है। इसी प्रकार अनिवार्य वसा अम्ल, विटामिन, खनिज, ट्रेस एलिमेन्ट्स, वनस्पति आदि की उपस्थिति बढती और स्वास्थ्य केलिए ही नहीं बल्कि मछली के उच्च रोधक्षमता, पोषण जनित रोगों का नियंत्रण और संतुलन केलिए महत्वपूर्ण है। रूपायित खाद्य में होर्मोन, एन्टिबयोटिक आदि का होना मछली और उपभोक्ताओं केलिए अच्छा नहीं है। इसलिए खाद्य के रूपायन में खाद्य सुरक्षा का भी विचार करना महत्वपूर्ण बात है। अतः यह सुव्यक्त है कि मछली का पोषण एक जटिल विषय है और वांछित फल प्राप्ति केलिए जलकृषि के खाद्य रूपायन में पर्याप्त ध्यान और अनुसंधान अनिवार्य है।

खाद्य की आवश्यकता

प्रत्येक मछली की पौष्टिक माँग बडे तौर पर इसके जैवरासायनिक प्रोफाइल से संबंधित होने पर भी मछली का अशन स्वभाव समझना महत्वपूर्ण बात है। यह देखा गया है कि साधारण मछलियों में 85% मांसाहारी, 6% सस्याहरी, 45% सर्वभक्षी और 2% अपमार्जक और परजीवी है। यह भी देखा गया है कि कार्प, मल्लेट जैसी मांसाहारी मछलियों का सफल पालन हो गया है। अधिकांश मछलियों में प्रोटीन की आवश्यकता समान रूप से 32 और 40% के बीच में है। चिंगटों में यह 35 और 40% के बीच में है। यद्यपि अब ऐसा विचार किया जाता है कि परीक्षित खाद्य की प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और लिपिडों के उपापचयन ऊर्जा मूल्य के संबंध में डाटायें उपलब्ध न होने के कारण ये अतिआकलन है। मछलियों में प्रोटीन की आवश्यकता जीवन के प्रारंभ में उच्च होती है और बढती की दशाओं में यह कम हो जाती है। इसी प्रकार खाद्य में सभी अनिवार्य ऐमिनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए ताकि प्रोटीन का संश्लेषण सुसाध्य हो जाएं। कुल मिलाकर कह जाए तो कम से कम प्रोटीन का 1/3 अनिवार्य ऐमिनो अम्ल से युक्त होना चाहिए। प्रोटीन में ऐमिनो अम्ल की आवश्यकता भी प्रोटीन के 25 से 46% के बीच विविध रहती है। इसके अतिरिक्त मेथिओनिन और फीनैल आलानाइन की भी विशेष आवश्यकता है। लिपिडों की बात ली जाएं तो अधिकांश मछलियों के लिए 7 से 9% आहारी लिपिड (डयटरी लिपिड) है। n-3 और n-6 बहुसंतृप्त वसा (पॉली अनसाचुरेटड फाटी एसिड) अम्ल का सीधा संश्लेषण मछली द्वारा नहीं की जा सकती इसलिए मछली तेल और मछली मांस खाद्यों में जोडकर इनको खिलाना उचित लगता है। वसा का आधिक्य ऊतकों में वसा संचयन का कारण बन जाता है जिससे संग्रहित एवं

संभरित मछली मांस दुर्गंधित हो सकता है। इसलिए वसा भरी जिगर से मछली की मृत्यु तक हो सकती है। इसके विरुद्ध वसा ऊर्जा का एक सांद्रित स्रोत है। मछली केलिए इसकी छोटी मात्रा में आवश्यकता भी है जो पोषण दबाव, भुखमरी अवस्था, जीवनकाल की प्रारंभिक अवस्था और शिशु मछलियों को दूर तक परिवहित करते वक्त उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए मछली खाद्य में वसा मिलाने का काम बहुत ही नाजुक होता है और यह काम समझदारी एवं सतर्कता से करनी चाहिए। आहारी कार्बोहाइड्रेट स्वीकार करने में मछलियों की असमर्थता पहले ही प्रमाणित की गयी है। इसलिए मछली खाद्यों में मोनोसैकराइड से बढकर स्टार्च का होना अनिवार्य है। अधिकतर स्टार्च एक पोषण घटक से बढकर एक योजक (बाइन्डर) का काम करता है। खाद्य संघटकों में विटामिनों और खनिजों का इतना महत्व है कि इनकी अनुपस्थिति से पोषण की कमी और तजन्य रोगों का उद्भव होता है। वसा को विलयन करनेवाले विटामिन *ए, डी, ई* और के की अतिमात्रा में उपयोग से आविषालु प्रभाव हो सकता है और फायदा बिना खर्च भी बढ जाएगी। हड्डियों की बढती एवं व्यापक स्वास्थ्य केलिए खनिज अनिवार्य हैं, अतः सूत्रित खाद्य में खनिज केलिए भी स्थान देना अनिवार्य है। उपर्युक्त संघटकों के अतिरिक्त सूत्रित खाद्य में योजक, आकर्षी वस्तुएं, उत्तेजक, एन्टिटोक्सिडन्ट्स, प्रतिरक्षक स्टेरयड और वर्णकों का अनुमेय मात्रा में होना मछली को स्वीकार्यता और कुछ वांछनीय विशेषकों (desirable traits) की प्रगति केलिए अनिवार्य है।

खाद्य संघटक

मछली के लिए आवश्यक पोषक और इनके आहार सूत्रण के गुणतायुक्त संघटक संबंधी जानकरी हमने प्राप्त की है। लेकिन केवल इस जानकारी से बनाया गया खाद्य आदर्श नहीं हो सकता। इसकेलिए मछली के मुँह का आकार, अशन स्वभाव, पेट का आकार और प्रकार, आमाश्य के प्रकिण्व (एनजाइम) और आंत्र के इन्जाइम की गुणता आदि की जानकारी प्रत्येक मछली के खाद्य सूत्रण केलिए अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। खाद्य गुटिकाओं की जल में स्थिर रहने की शक्यता (water stability), भंडारण, स्वादिष्टता, पोषण सुरक्षा आदि भी ध्यान देने योग्य विशेषताएं होती है। भारत में मछली खाद्य निर्माण की दिशा में कई अनुसंधान कार्य होने पर भी हमारे अनुसंधान कार्य में कुछ मौलिक न्यूनताएं है। कई खाद्य निर्माताओं ने कसाईखाना के अपशिष्ट, मत्स्य चूर्ण, रेशमकीट प्यूपे आदि कई प्रकार के संघटकों का उपयोग किया है। ये सब अत्यन्त उत्कृष्ट संघटक होते हैं, लेकिन इनकी जैव रासायनिक गुणताएं विभिन्न होने के कारण संघटक गुणताओं में सामंजस्यता नहीं हैं। यह भी नहीं एक खाद्य उद्योग या यहाँ तक एक बडे फार्म की आवश्यकता पूरा करने लायक मात्रा में ये वस्तुएं उपलब्ध भी नहीं होना है। प्यूरिफैइड अनसाचुरेटेड फाट्टी आसिड (PUFA) केवल समुद्री जीवों से प्राप्त होने के कारण सभी खाद्यों में मत्स्यचूर्ण एक प्रधान घटक होना अनिवार्य है। भारत में अधिकतर मत्स्यचूर्ण भागिक रूप से बिगडी गयी ट्राश मछली और कवच प्राणियों से बनाया जाता है। इस में लिपिड दुर्गंध पूर्ण बन जाता है और असंतृप्त वसा अम्ल का अपचयन हो जाता है। ट्राश मछलियों में पायी जाने वाली विविधता एक एकरूप गुणता के खाद्य उत्पादन के रूपायन को असंभव्य करा देता है। इसके अतिरिक्त इसमें अम्ल अविलय भस्म (आसिड इनसोलुबल एश) का स्तर मृदा और सिलिका कणों सहित 16% तक उच्च, लवण स्तर 12% और चिटिन का स्तर भी काफी उच्च होता है। इस प्रकार भारत में उपलब्ध मत्स्यचूर्ण गुणता और प्रकार की दृष्टि से माँग की पूर्ति करने लायक नहीं होता है और ऐसी स्थिति में मत्स्यचूर्ण का आयात होता है जो कृषि संचालन लागत को बढ़ाता है। सी एम एफ आर आइ ने महिमा नामक एक चिंगट खाद्य विकसित किया जिसमें मत्स्यचूर्ण और तेल को घटक के रूप में जोडने का निराकरण किया है। इसके स्थान पर महिमा में चिंगट सिर, द्विकपाटी मांस और स्क्विड सिर जैसे समुद्री संघटकों का उपयोग किया गया है जो बहुत सफल साबित हुआ है। जलकृषि खाद्य उद्योग *मत्स्यचूर्ण जाल* की पकड में पडी रहनेवाली वर्तमान स्थिति में इस विशिष्ट उपलब्धि को नकारा नहीं जा

सकता। कुकुट खाद्य उत्पादन में भी अभी मत्स्यचूर्ण का उपयोग कम कर दिया है; इस में प्रति एकक मत्स्यचूर्ण का उपयोग अब 80% से 40% तक घटा दिया है। अतः महिमा खाद्य का विकास एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जिसके ज़रिए यह साबित हुआ है कि कम खर्च पर देशी वस्तुओं के प्रयोग से जलकृषि केलिए आवश्यक पौष्टिक खाद्य का निर्माण हो सकता है।

खेतों में निर्मित खाद्य

अधिकतर मछलियाँ 30 मिनट में परितृप्त हो जाती है। इस जानकारी ने खेतों में खाद्य निर्माण केलिए प्रेरणा दे दी है। आन्ध्रा के जलकृषि खाद्य का परिदृश्य इसका उत्तम उदाहरण है। यहाँ के किसान वसा निकाले गये धान की भूसी और खली 20 कि ग्रा धारिता के प्लास्टिक उर्वरक थैलियों में भरके उन में छोटे छोटे रन्ध्र डालकर जल मध्य में रखते है। भूखी मछली थैलियों के रन्ध्रों से चूसकर खाना खाती है। इसमें खाद्य का नष्ट भी नहीं होता है और व्यय भी कम होता है। कुण्डों को उर्वर बनाकर प्राकृतिक खाद्य उत्पादन बढ़ाना भी इस दिशा में उचित काम है। अधिकतर मछली कृषक छोटे पैमाने के कृषक होते है और कम व्यय की इस रीति उन केलिए लाभदायक भी है।

भोजन नीतियाँ

भारत के परिदृश्य में फुड कनवेर्शन रेट (एफ सी आर) 1:1.8 या 2 मान्य बन गया है। पियेर्सन स्क्वयेर्स या लीनियर प्रोग्रामिंग में प्रतिपादित *लीस्ट कोस्ट फोरमुले* के अनुसार खाद्य का सूत्रण किया जाता है। *एफ सी आर* में प्रगति लाना सभी अनुसंधेताओं का लक्ष्य रहा है और इस दिशा में कई लेख भी अब उपलब्ध है। एक सफल भोजन नीति के रूपायन में खाद्य की जल स्थिरता का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः इस से खाद्य पर होनेवाला खर्च एक ओर कम होता है तो दूसरी और पानी का प्रदूषण नहीं होता है। हमारे कृषकों को खाद्य निर्माण केलिए उपयोग की जाने वाली वस्तुओं के आकार पर भी ठीक ज्ञान होना अनिवार्य है क्यों कि ठीक प्रकार से धूलित, भापित और डाइ के सहारे गुटिका कर दिये गये खाद्य पानी में जल्दी-विलीन नहीं हो जायेगा। कार्प की शिशु मछलियाँ 0.5 मि मी से कम आकार के खाद्य अच्छी प्रकार खाती है। इसी प्रकार मछलियों के पोनों को सूत्रित खाद्य के टुकडों से खिलाना अदृढ खाद्य से अच्छा मान लिया गया है। अंगुली मीनों को 2.5 और 3.0 मि मी आकार के गुटिका टुकडों से खिलाना अदृढ़ खाद्य से भी अधिक प्रभावी है। अतः इसके इष्टतम आकार के गुटिका टुकडों का प्रयोग करके जलकृषि में भोजन नीतियों को भी पर्याप्त स्थान देना अनिवार्य बन जाता है।

भोजन देने की बारी का प्रमुख संबन्ध मछली की बढ़ती से है। साथ ही साथ निम्न लागत और कम अपशिष्ट भी महत्वपूर्ण है। खेतों पर किए गए परीक्षणात्मक निरीक्षणों से इस पर जानकारी प्राप्त हुई है अतः अनुसंधान से बढ़कर अनुभव जन्य परीक्षण इस विषय में सफल प्रमाणित हुए हैं। ओगावा, पाइपर, डी सिल्वा जैसे पूर्व कार्यकर्ताओं ने भोजन की इष्टतम बारी का निदर्शन किया है। इन सब परीक्षणों से यह देखा गया है एक दिवस केलिए निश्चित खाद्य छोटे छोटे भागों में बाँटकर 24 घण्टों की अवधि में कई बार देने से तेज़ बढ़ती हो सकती है। जब अधिकतर सस्याहारियों केलिए यह रीति उपयुक्त देखा गया तब मांसाहारियों केलिए यह रीति शायद ठीक नहीं लगी। विभिन्न पालन रीतियों के अधीन प्रत्येक जातियों का दैनिक खाद्य का निर्धारण मछली के शरीर भार और भोजन बारी की प्रतिशतता के अनुसार की जानी चाहिए। पण्डियन की राय में पालन योग्य देशज जातियों के लिए खेत पर आधारित आर्थिक भोजन नीतियाँ अशन स्वभाव, पोषण की आवश्यकता, गुटिका का आकार और जल स्थिरता के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए। नन्दीशा और सहवर्तियों द्वारा प्रोटीन खाद्य की मात्रा एकांतर में उच्च और निम्न करके किये गये अध्ययनों में बढती दर में 150 से 200% तक की प्रगति अंकित की। इसमें खाद्य लागत भी कम होती है। डी सिल्वा आदि ने खाद्य दर एकांतर में उच्च और निम्न करने की रीति का

सुझाव दिया है। पाण्डियन आदि की राय में बीच बीच की भुखमरी उच्च बढती दर प्राप्त करने केलिए उचित है। विकसित देशों में भोजन करानेवाला यंत्र, बहुत ही उपयुक्त देखा गया है; पर इसका पारिश्रमिक खर्च ज्यादा है। भारत जैसे देशों में जहाँ मज़दूर लागत सस्ता और जलकृषि विकास का एक मुख्य लक्ष्य रोज़गार प्रदान करना होता है वहाँ पोषक यन्त्रों का इस्तेमाल करना औचित्यपूर्ण नहीं है।

खाद्य उद्योग

भारत में खाद्य उद्योग कई कारणों से सफल नहीं हो पाया है। असंस्कृत खाद्य संघटकों एवं खाद्य की अवगुणता, आयात नीति, आधुनीकरण की असफलता, खाद्य वस्तुओं की उच्च लागत, खटिया विपणन नीतियाँ, संभरण और खेत प्रबंधन में सतर्कता का अभाव, अवैज्ञानिक भोजन नीतियाँ आदि इस असफलता के कारण है। आयातित चिंगट खाद्यों का कनवेर्शन रेट देशी खाद्यों की तुलना में उच्च होने के कारण कई चिंगट कृषक आयातित खाद्यों पर अधिक रुचि दिखाते है। सरकार द्वारा लगाये गये 5.5% का आयात कर भारतीय खाद्यों के आगे उच्च प्रतिस्पर्द्धा भी खाडा करती है। *सन्तानकृष्णन* और *विनोद* ने यह सूचित किया है कि आदर्श खाद्यों केलिए कम से कम ये गुणताएं जैसे प्रोटीन केलिए परिचित खाद्य संघटकों की जानकारी, रंग और आकार की समानता, दुर्गंध रहित मत्स्यचूर्ण, 4 से 6 महीनों तक का बेखराब अवस्था (शेल्फ लाइफ), कम से कम 2.5 घंटों तक की जल स्थिरता होना अनिवार्य है। भारत में उच्च जल स्थिरता के अपरंपरागत संयोजकों (बैंडेर्स) का परीक्षण किया था और स्थानीय संयंत्रों से उपलब्ध कई वस्तुएं इसके लिए उपयुक्त भी देखा गया है। प्राप्त परिणामों का वाणिज्यीकरण के पहले अनुसंधान परिणामों को समेकित करके विभिन्न पालन स्थितियों में इसका प्रयोगात्मक परीक्षण के बाद प्रयोग में लाना उचित होगा।

प्रबंधकीय-परिचिंतन

किसी भी कारोबार के समान इसमें भी सफलता की कुंजी उचित प्रबन्धन ही है। खाद्य संघटकों के चयन से लेकर विपणन तक की कई अवस्थाओं में प्रबन्धन की आवश्यकता पडती है। पैदावार लागत, प्रचालन व्यय, श्रमिक प्रबन्धन, जल गुणता परिचिंतन खाद्य संभालन और भंडारण, पालन और रोग प्रबन्धन, नष्ट और जोखिम कम करना, वित्तीय प्रबन्धन, सांतरित संग्रहण और उचित विपणन नीतियाँ आदि जलकृषि के सफल प्रचालन केलिए अनिवार्य है। प्रचालन व्यय में 60% खाद्य के लिए होने की स्थिति में खाद्य के सतर्क प्रबन्धन विकल्पों से जलकृषि लाभदायक बनायी जा सकती है।

निष्कर्ष

भारत एक *जलविस्फोट* केलिए तैयार रहने के इस अवसर में इसके विकास में जलखाद्य उद्योग को अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। अनुसंधान परिणामों को समेकित करके खेतों में परीक्षित करना है। प्राप्त सूचनाओं का आपस में बाँटते हुए लाभ और लागतों का मूल्यांकरन करना है। जलखाद्य उद्योगों को अन्य समान उद्योगों के समान महत्व देना चाहिए। अल्पतम उत्पाद गुणता नियत करके आधिशासित किया जाना चाहिए। तुलनात्मक फुड कनवेर्शन रेट और मूल्यों के अनुसार प्रत्येक जातियों केलिए प्रत्येक खाद्य विकसित करना चाहिए। उत्कृष्ट, सस्ता और कार्यक्षम उत्पादों को लक्ष्य करते हुए उद्यमों के बीच उत्साहपूर्ण स्पर्द्धा बढाना चाहिए। जलकृषि करनेवाले संस्थायें जैसे सी एम एफ आर आइ, सी आइ एफ टी, सी आइ एफ ए और सी आइ बी ए अपने अपने अनुसंधान परिणामों को समेकित करके एम पी ई डी ए जैसे संगठनों के सहयोग से जलकृषि को आगे बढाना चाहिए ताकि भारत जलकृषि उत्पादन में अद्वितीय स्थान हासिल कर सके। इस क्षेत्र में हमने पर्याप्त ध्यान अर्पित किया है और सी एम एफ आर आइ द्वारा किये गये कार्यों से निकट भविष्य में जलकृषि उद्योग से देश लाभान्वित भी हो जाएगा इस में दो राय नहीं। ●

झींगा पालन में फैले रोग तथा निदान

चंद्रकांत तायडे, मिरियम पॉल, ए.के.वी. नासर.
केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान का क्षेत्रीय केंद्र, विशाखपट्टणम, आ. प्रदेश

1980-1990 के दशकों के दौरान विश्वभर मे झींगा पालन का काफी प्रगति हुई है। झींगा पालन का मुख्य लक्ष्य ज्यादा उतपादन बन चुका है। इस लक्ष्य को साकार करने मे ज्यादा निवेश और संग्रहित घनत्व आवश्यक बन गए है। मगर कृषकों द्वारा अपनाई गई यह रीतियाँ गलत साबित हुई है। जल प्राचलों में झींगो के भोजन या अन्य कारणों से जो प्रदूषण फैलता है, उसका लाभ उठाते हुए कई तरह के रोगकारक किटाणु फैल जाते है। सदियों के गवेषण के बाद भी रोगों के रोकथाम में अधिक प्रगति नही हो पाई है।

झींगा पालन बहुत तीव्र गति से भारत के तटीय जल में फैल रहा है। जिस तरह से झींगा पालन में वृद्धि हो रही है, उस तरह बीमारियों के बारे में भी लोगों में काफी जागरूकता आ रही है। कीटाणु से उत्पादित रोगों में विषाणु जनित रोगों ने झींगा पालन को काफी गहरा अघात पहुँचाया है। 1990 के दौर में झींगा पालन एक बहुत फायदेमंद व्यवसाय हुआ करता था वहाँ 1996 मे White Spot बीमारी के आने से लगभग पूरा व्यवसाय ही रुक सा गया है।

झींगा पालन प्रणाली में रोग

झींगा पालन में पर्यावरण का दुष्प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जिससे रोगों के विस्फोटन से अंततः पूरी कृषि का सर्वनाश हो रहा है। बीमारियों की बढती घटनाओं के लिए पर्यावरण का निम्नीकरण जिम्मेदार है जिससे समुद्री झींगा पालन मे अस्थायिवत्तता का माहौल पैदा हो गया है। अब यह समझ में आ रहा है कि जो रोग विषाणु, जीवाणु तथा प्रोटोजोआ से उतने रोगजनक तथा संक्रामक नही होंगे अगर झींगा पालन आदर्श परिस्थितीयों का कडाई से पालन किया जाए। पारितंत्र के गलत प्रबंधन से झींगों पर तनाव बढ रहा है और यही बीमारियाँ होने का प्रमुख कारण बन चुका है। इसके अतिरिक्त पानी की प्रति मात्रा में झींगों का ज्यादा घनत्व होने से भी तीव्र तथा अर्धतीव्र पालन, रोगों के उपज तथा संक्रमण को बढावा दे रहा है। पालतु झींगा बडी मात्रा में संक्रामक तथा बिना संक्रामक बीमारियों का ज्यादा संवेदनशील है।

विषाणु रोग

अब तक 21 विषाणु जनित रोग विश्वभर से प्रतिवेदित किए जा चुके है। उसमें से काफी सारे भारत वर्ष से भी प्रतिवेदित किए जा चुके है। इनमें से बहुत कम गंभीर बिमारी के लिए जिम्मेदार है और बाकी बस एक जिज्ञासा बनकर रह गए है। White spot virus (व्हाईट स्पॉट विषाणु) Monodon Baculo virus (मोनोडान बॉकुले विषाणु), IHHNV (आई एच एच एन वी) भारत में पाए जाने वाले झींगो मे है तथा Yellow head virus (पीला मस्तीक विषाणु) एवं Parvo like virus (पारव्हो जैसा विषाणु) भारत के झींगो मे मैजूद होने का अनुमान लगाया जा रहा है। इन सारे विषाणु जनिक रोगों का फैलाव पूरे भारत के तटीय क्षेत्र में हो चुका है जिससे करीब 32,000 हेक्टर क्षेत्र में यह बीमारियाँ फैल चुकी है।

जीवाणु से संबंधित रोग

झींगा पालन के शुरूआत से ही विभिन्न वंशों (Genera) के झींगा-रोगकारक जीवाणु देखने को मिलते हैं Gram negative जीवाणु समुद्री वातावरण में एवं झींगों के शरीर पर पाए जाते हैं। मगर पानी के प्रदूषण जैसे तनावक वातावरण में यही जीवाणु झींगों में रोगाणु बन जाते हैं।

पोषण संबंधित रोग

इन रोगों में सबसे पहला एस्कोर्बिक एसिड के आभाव से होने वाली बीमारी है जिसे अब AADS एस्कोर्बिक एसिड़ डिफिझेन्सी सिन्ड्रोम कहलाया जाता है। इस रोग में झींगों पर काले रंग के घाव देखे जाते है। एक और रोग, क्रेम्पड मजल सिन्ड्रोम (CMD) में झींगों के पूंछ का भाग मुडकर जकड जाता है और इसे सीधा नही किया जा सकता। झींगो के कवच का नर्म हो जाना एक और साधारण -तर पोषण सम्बन्धित रोग है। इस बीमारी को अधिकतः मोनोडॉन झींगों में पाया जाता है।

अन्य रोग

इन रोगों के अलावा ऐसे भी रोग है जो जानलेवा नहीं मगर झींगो के स्वास्थ्य में कमजोरी और कृषक की आमदनी में नुकसान लाता है। झींगो में कवक एवं आदिजन्तुओं से भी रोग फैलता है। ऐसे जन्तुओं के झींगों के गलफडों में फैलने से स्वास्थ्य में कटौती और शारीरिक बढाव में बाधा आ जाती है।

रोग निदान

जलकृषि के तकनीकी प्रबंधन के लिए रोगों का त्वरित रोगनिदान बहुत जरूरी है। यह हमें सिर्फ रोगों का निदान तथा विशिष्ट दवा की जानकारी ही नही बल्कि उसके रोकथाम के लिए नई राहें दिखायेंगा। इस लिए रोगनिदान के लिए सही तथा संवेदनशील तकनीकी का विकास होना अनिवार्य है। पिछले दस सालों में रोगनिदान में काफी प्रगति हुई है। आण्वीक जिवशास्त्र के तकनीकी विकास के बाद तो बहुत सारे रोगों के निदान के लिए नये जाँच Kits विकसित कराये गए है। इसमें महत्वपूर्ण तकनिकी जैसे पॉलिमरेज चेन रियाक्शन (Polymerase chair reaction), इन सितु हाईब्रिडाईजेशन (In Situ hybridization) या Immunodiagnostic techniques (प्रातिरक्षा रोगनिगान की तकनीकी) है। चुँकि झींगो में पूर्णतः विकसित प्रतीरक्षा तन्त्र नही है इस वजह से टीकाकरण के अनुसंधान में हमें विशेष उपलब्धि हासिल नही हुई है। तकनीकी प्रबंधन से सिर्फ रोगों के दवा निकालना या कोई टीका विकसित करने से रोगों से पूर्णतः मुक्ति नहीं मिल सकती बल्कि रोग प्रतिरोध शक्ति के माध्यम से रोगों का आविर्भाव नही हो इस विषय में अध्ययन बहुत जरूरी है। विदेशों में विशिष्ट विषाणु मुक्त (Specific pathogen free) तथा रोग प्रतिरोधक (disease resistant) झींगो के विकास की दिशा में भरसक प्रयास जारी है। इस विषय में हमारे देश में भी अनुसंधान किया जा रहा है। अगर हम रोग प्रतिरोधक झींगो की नस्ल को प्राथमिक रूप से प्रयोगशाला में ही 5-6 नस्लें तक विकसित कर पाये तो हमारे लिए यह एक बहुत बडी उपलब्धि साबित होगी जिससे हम किसानों को रोग प्रतिरोधक झींगों के बीजाणु देकर रोगों का आविर्भाव तथा विस्फोटन काफी हद तक रोक पायेंगे।

रोगनिदान की तमाम तकनीकी में आज सबसे ज्यादा महत्व इन बातों पर दिया जा रहा है:-

- नई तीव्र, संवेदनशील तथा कम खर्चीला रोगनिदान की तकनीकी का विकास करना।
- नई टीकों के बारे में अनुसंधान कर नए टीकें विकसित करना।
- नई प्रतिरक्षा तरीकों को विकसित करना, तथा
- पर्यावरण प्रबंधन से जुडे सभी प्राचलों के लिए नई टुल्स (Tools) का विकास करना।

रोगनिदान के क्षेत्र में नीचे दिए गए तकनीकों का सामान्य तौर पर उपयोग किया जा रहा है।

डी.एन.ए. आधारित तकनीकी (DNA based techniques)

Polymerase chain reaction (पॉलिमरेज चेन रियाक्शन):

ये तकनीक बहुत विशिष्ट तथा संवेदनशिल है जिसके द्वारा पहले चुने गए डी.एन.ए. की कई कापियाँ बनाई जाती है। इस तकनीक के द्वारा डी.एन.ए. के खंड को प्राईमर से लम्बा किया जाता है जिससे यह जेल इलक्ट्रो फोरेसिस

(Gel Electrophoresis) के माध्यम से पता लगाया जा सकता है। पहले चुनाव किए गए डी.एन.ए. के क्षेत्र को primers द्वारा लम्बाया जाता है। जिसे Gel में देखने हेतु Ethidium bromide नामक डाई से रंगित किया जाता है जिसको UV Light के माध्यम से Transilluminator नामक उपकरण द्वारा आँखो से डी.एन.ए.के बैन्दों को देखा जा सकता है। चुँकि यह तकनीक ज्यादा अचुक है और प्रयोग के दौरान थोडी सी गलत प्रतिक्रिया (False positive reaction) दे सकती है। इस टेस्ट की संवेदनाशीलता की वजह से विषाणु का एकमात्र कण भी पोसिटिव टेस्ट दे सकता और बहुत बार यह समझना मुश्किल हो जाता है कि पोसिटिव टेस्ट है मतलब रोग का होना आनिवार्य है या नही। यह बहुत सोफिस्टिकेटेड तकनिक है और इसके लिए पूर्णतः विकसित सुविधाएँ तथा निष्णात कारीगरों की जरूरत है।

प्रतिरक्षा संबन्धित रोगनिदान की तकनीकी

Elisa (प्रकिण्व इम्युनोजोरबेन्ट जाँच)

इस तकनीक द्वारा प्रतिजन (antigen) तथा प्रतिरक्षी (antibody) का आपस में मेल-जोल का इस्तेमाल परिमाणात्मक तथा गुणात्मक निर्धरण के लिए किया जाता है। इस तकनीक मे प्रतिरक्षी को एक विशिष्ट प्रकार प्रकिण्व के साथ बाँध लिया जाता है। इस रूप से रासायनिक संयोजन द्वारा जो immune complex solid phase में बनते है उनको आमापित किया जा सकता है। यह जाँच पूर्णतः रंग के ऊपर निरभरित है जो विशिष्ट प्रकार के substrate डालने के बाद रंग बदल जाता है। रंग की तीव्रता के ऊपर जाँच का अमापन किया जाता है। जिसमें ELISA reader नामक उपरकण को प्रयोग में लाया जाता है। यह बहुत ही तीव्र तथा संवेदनशील जाँच है जिसमें प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी दोनों को अमापित की जा सकती है।

Agglutination Test (अग्लूटिनेशन टेस्ट)

यह सबसे आसान जाँचो में से एक है जिससे particulate antigen को अमापित किया जा सकता है। इस टेस्ट को प्रतिरक्षी अमापित करने हेतु भी उपयोग में लाया जा सकता है। इस जाँच के लिए बहुत ज्यादा सेफिस्टिकेटेड उपकरणों की जरूरत नहीं है और आमतौर पर हर प्रयोगशाला में यह टेस्ट किया जा रहा है। इस टेस्ट के कई प्रकार है जैसे Slide Agglutination, Latex Agglutination, Tube Agglutination इत्यादि। Slide agglutionation टेस्ट antibody तथा antigen के दिखाई देने वाले Clumping पर आधारित है जिसमें दोनो, प्रतिजन तथा प्रतिरक्षी को स्लाइड पर मिलाया जाता है। Latex agglutination टेस्ट में पॉलीस्टीरीन beads को विशिष्ट प्रतिरक्षी से संवेदित किया जाता है, जो अपने विशिष्ट प्रतिजन या तथागत रूप से चिपक जाते है जिससे बडे झुरमुट (Clumps) टेस्ट ट्यूब में दिखाई पडते हैं। Latex agglutination टेस्ट Co-agglutination टेस्ट से ज्यादा संवेदनशील हैं परन्तु इसके reagents महंगे है।

फ्लूरोसेन्ट अन्टिबोडि टेस्ट (Fluoroscent antibody test)

इस टेस्ट मे प्रतिरक्षी को Fluoroscein नामक डाई के साथ बांध दिया जाता है। यह डाई radiation आकृष्ट कर लेती है जिसको Flurosience microscope द्वारा देखा जा सकता है सामान्य तौर पर इस टेस्ट को किटाणुओं की स्थानियता के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

ऊपर प्रतिपाद्य किये गए तकनीकी के अलवा आजकल नई नई तकनीक को रोगनिदान हेतु आजमाया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य तीव्र रोग निदान, तकनीक का कम खर्चीला होना तथा किसानों तक आसानी से पहुँचाना है। सेहत प्रबंधन की दिशा मे नए नए प्रयोग टीका विकसित करने तथा टीकाकरण से जुडे विभिन्न भागों पर केंद्रित किया जा रहे है। टिकाकारण के साथ Adjuvant का इस्तेमाल न केवल antigen की शक्ति बढाता है बल्कि उसका शरीर के अंदर ज्यादा दिन तक असर बनाए रखता है जिससे रोग प्रतिरोध शक्ति बढती है।

झींगो की नैसर्गिक रोग प्रतिरोध शक्ति बढाने हेतु

आजकल प्रतिरक्षी माहुलकों तथा प्रोबयोटिक्स (Probiotics) काफी मात्रा में प्रयोग जलकृषि में हो रहा है। इस से काफी हद तक बीमारी के रोकथाम मे मदद मिल रही है परंतु इस विषय में अभी काफी अध्ययन की जरूरत है।

रोगों की व्यापक रोकथाम के लिए ऊपर विस्तृत उपायों के अलावा अब समय आ चुका है कि सरकार के साथ-साथ वैज्ञानिक, पर्यावरण से जुडे कार्यकर्ता, सामाजिक कर्याकर्ता तथा किसानों को गंभीर रूप से चिंतन करके इस नैसर्गिक संपदा का शोषण रोकना है। ज्यादा फायदा की चाह में जो गलत प्रबंधन हो रहा है उसे सही मायने में चलने हेतु गंभीर विचार की सख्त जरूरत है वरना वह दिन दूर नही जब यह सबसे फायदेमंद व्यवसाय एक बडी जोखिम बन कर रह जायेगा। •

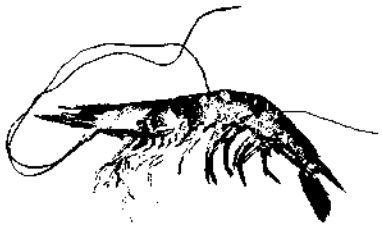

परामर्श सेवा सेल

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, निम्नलिखित विषयों पर परामर्श सेवा प्रदान करता है

- तटीय मेखला और समुद्री पर्यावरण का मोनिटरन, पर्यावरणीय प्रभाव का निर्धारण, जीववैविद्यता परिस्थिति विज्ञान
- मत्स्यिकी-मत्स्यन प्रभाव निर्धारण, अधोजल खोज, स्टाक निर्धारण, तटीय संपदा सर्वेक्षण, दूर संवेदन, संरक्षण एवं प्रबन्धन, समाज-आर्थिक मूल्यांकन
- तटीय जलकृषि-पर्यावरणीय शक्यता, स्थान चयन, कवचप्राणी और पख मछली कृषि प्रणालियाँ, स्फुटनशाला प्रौद्योगिकी, रोग, पोषण, समुद्र रेंचन और
- प्रशिक्षण

गैरसरकारी, अर्धसरकारी और सरकारी क्षेत्र के ग्राहकों को प्रतियोगी दरों पर प्रशिक्षण उपलब्ध कराते है। विस्तृत जानकारी केलिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें:

निदेशक

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान,

पी.बी. सं : 1603, कोचीन-14, केरल, भारत.

दूरभाषा : (0484) 394867, 394357, 393192, 394794, तार : कडलमीन, एरणाकुलम

फाक्स : 0091-0484-394909;

ई-मेल : mdcmfri@md2.vsnl.net.in

कॉमन कार्प (सिप्रनस कार्पियो) मछलियों में प्रजनन तथा अधिक बीज उत्पादन

आर.के. गुप्ता, एन.के. यादव, के.एल. जैन एवं जी.एस. दिनोदिया
जीव विज्ञान तथा जल कृषि विभाग, चौ0 चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मछली बीज उत्पादन की आधुनिक व वैज्ञानिक तकनीक का एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि जलक्षेत्र का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाए कि शिशु मछलियों को अधिक से अधिक ऊर्जा प्राप्त हो। इसके लिए आवश्यक है कि आहार-शृंखला (Food Chain) को सरल एवं छोटा रखा जाए तथा तालाब से सारे अवांछनीय वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं को निकाल दें। जिससे ऊर्जा का सही उपयोग के साथ-साथ हानिरहित वातावरण भी तैयार किया जा सके जिससे मछली बीज की अधिकतम पैदावार प्राप्त की जा सके।

हमारे देश में उपलब्ध जलक्षेत्रों का यदि पूर्ण रूप से उपयोग किया जाए तो कम से कम दो बड़े उद्योग जैसे मछली पालन और मछली बीज उत्पादन उद्योग पनप सकेंगे। इससे देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के साथ ही कुपोषण एवं बेरोजगारी जैसी समस्या का हल भी हो सकेगा। विभिन्न राज्य सरकारों तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की प्रसार सेवाओं के फलस्वरूप लोगों का झुकाव इस ओर बढ़ता जा रहा है और आज हम ऐसी स्थिति में पहुँच चुके है कि अगर समिश्र मछली पालन के इसका विकास रुक जाएगा। इसलिए इस समय मछली बीज उत्पादन को बढ़ाने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मछली-बीज उत्पादन मुख्यतः अलग-अलग क्षेत्रों से होता है। (i) नदियों से एकत्रित किया गया मछली बीज (ii) मछलियों को तालाब या बंध में ही प्रजननरत कराकर मछली-बीज का उत्पादन। प्राकृतिक रूप से कामन कार्प मछली ठहरे हुए मीठे पानी में अंडे देती है। अंडे देने का स्थान ज्यादातर तालाब का वह

कामन कार्प का प्रजनन

हिस्सा होता है जहाँ पर पानी की गहराई कम हो, जो लगभग 2.5 से 3.0 फुट तक होती है, यह भाग जलीय पौधों से भी भरा होता है। यदि तालाब में पानी गहरा हो तो मछलियां उस स्थान पर अंडे देती है जिस स्थान पर जलीय पौधे गहरे पानी से निकल कर पानी की सतह तक पहुँचे जाते है। पानी की ऊपरी सतह पर तैरने वाले पौधे, कामन कार्प मछली के प्रजनन के लिए एक उत्तम स्थान बना देते हैं इन मछली के अंडे लगभग 1.2 से 2.0 मि.मीटर डायामीटर आकार के होते है तथा इनमें पानी के पौधे या तालाब की पक्की दीवारों के साथ चिपकने का स्वभाव होता है।

लम्बे समय के अनुभव तथा अनुसंधान द्वारा यह देखा गया है कि पुरानी प्रचलित अप्राकृतिक प्रजनन द्वारा जिसको "ब्रिडिंग हापा प्रजनन" तकनीक कहा जाता है, ब्रिडिंग हापा अथवा कपड़े का चोकोर जाल, जिसकी बहुत ही महीन जाली होती है, में मादा तथा नर मछलियों को

क्रमशः 1:2 के अनुपात में डालकर प्रजनन कराने से मादा मछली की प्रजनन शक्ति को पूर्ण रूप से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था, तथा "ब्रिडिंग हापा तकनीक" द्वारा मादा मछली से केवल 50 से 60 प्रतिशत ही सफलता मिलती थी। जबकि "रूपांतरित तकनीक" (Modified Breeding Technique) द्वारा 90 से 100 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस तकनीक के अनुसार नर और मादा मछलियों को "ब्रिडिंग हापा" में ना डालकर इनको छोटी नर्सरी तालाबों में छोड़ दिया जाता है तथा मादा व नर मछलियों को क्रमशः 1:2 के अनुपात की बजाय 1:6 के अनुपात में प्रजनन तालाबों में डाला जाता है। नर्सरी तालाबों में बांसो पर जलीय पौधों को बांध कर इस प्रकार से तैराया जाता है कि ये जलीय पौधे तालाब के पानी की सतह को पूरी तरह से ढक लें। रूपांतरित तकनीक के प्रयोग में आने वाली कामन कार्प मछली के नर तथा मादाओं को किसान के मछली तालाबों में से बड़े तालाब (Stocking Tank) से पकड़कर प्रजनन के निर्धारित समय (मार्च) के दो महीनों पहले, जनवरी मास के प्रथम सप्ताह में अलग-अलग रखा गया तथा निम्नलिखित विधि द्वारा नर तथा मादा मछलियों को प्रजनन के लिए तैयार किया गया (Pre-Breeding Technique)।

(क) प्रजनकों को अलग अलग रखना (Segregation of male and female brood stock)

कामन कार्प मछली के नर तथा मादा प्रजनकों को दिसम्बर या जनवरी के मास में अलग कर दिया जाता है तथा अनियंत्रित प्रजनन को रोकने के लिए उन्हे पृथक पृथक तालाबों (Rearing Tank) में रखा जाता है। उन्हे प्रतिदिन उनके शरीर के कुल भाग 3 से 5 प्रतिशत की दर से अनुपूरक भोजन जिसमें 1:1 अनुपात में चावल की भूसी तथा सरसों या मूंगफली की खली शामिल होती है। यदि प्रजनको का भार 600 से 800 ग्राम के आसपास हो तो भोजन की मात्रा 5 से 7 प्रतिशत प्रतिदिन भी दी जा सकती है।

(ख) प्रजनकों का चयन (Selection of male and female brood stock:)

किसी प्रकार के प्रजनन कार्य के लिए अंडो का परिपक्व और स्वस्थ होना अनिवार्य है। यदि स्वस्थ गर्भवती मादा मछली को पेट के बल भूमि पर रखा जाये तथा उसे पीठ के बल उल्टा करने पर पेट में दोनों तरफ झोल पड़ जाता है जिससे अंस भाग तथा श्रोणि भाग के बीच छोटी सिलवट पड़ जाती है तो मादा मछली पूर्ण रूप से प्रजनन करने के लिए तैयार है। मादा मछली की अंडादानी पपीते के भांति थोड़ी उभरी दिखाई देती है और उसको हल्के से दबाने पर अंडादानी से पके हुए अंडों की एक कतार बाहर आती हुई दिखाई देती है। प्रजनन के लिए पूर्ण रूप से तैयार नर मछली के पेट को हल्का सा दबाने पर सफेद रंग का शुक्र (Milky fluid with sperm) रिसने लगता है, जो नर मछली के पूर्ण रूप से प्रजनन के लिए तैयार होने को संकेत देता है।

(ग) प्रजनन विधि (Breeding technique)

रूपांतरित प्रजनन तकनीक के लिए कामन कार्प मछली का प्रजनन सूती या नायलॉन के धागों के द्वारा बने हापा जाल अथवा सीमेंट से बनी हुई छोटी टंकियो या नर्सरी तालाब का प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक के अंतर्गत मादा और नर मछलियों को अप्राकृतिक प्रजनन की तरह "ब्रिडिंग हापा" में ना डालकर इनको पक्के नर्सरी तालाबों में जिनका माप 40 फुट x 20 फुट x 5 फुट का हो, में मादा व नर मछलियों को क्रमशः 1:6 के अनुपात में डाला जाता है। इन नर्सरी तालाबों में बांसो के 6 से 8 फुट लम्बे टुकड़ो पर जलीय पौधों हाईड्रिला अथवा वैलिसनेरीया) को बांध कर इस प्रकार पानी में डाला जाता है कि ये जलीय पौधे पानी की सतह को पूरी तरह से ढक लें। एक नर्सरी तालाब में 1:6 के अनुपात से 24 नर जिनका वजन 150 ग्राम से 200 ग्राम के बीच का हो तथा 4 मादाएं जिनका वजन 500 ग्राम से 700 ग्राम के बीच हो तथा नर और मादा पूर्ण रूप से प्रजनन के लिए तैयार हो ऐसी ही प्रजनन मछलियों

तालिका

कॉमन कार्प मछली का प्रजनन तथा बीज उत्पादन

परीक्षण नर्सरी तालाबों क्रमशः नं.	मादा प्रजनकों का औसत वजन (ग्राम)	नर प्रजनकों का औसत वजन (ग्राम)	मादा व नर प्रजनकों का प्रति तालाब में अनुपात	कुल बहुप्रजकता (%)	कुल निषेचित अंडे (%)	कुल अनिषेचित अंडे (%)	कुल जीवित क्षुद्र मीन (%)	प्राप्त शिशु मीन/जीरा मीन की संख्या (हजारों में)	जीवित मछली बीज की कुल संख्या (हजारों में)	जीवित मछली बीज (%)
1.	560.0	135.0	1:6	90.0	93.0	7.0	77.5	28.0	21.0	75.0
2.	600.0	155.0	1:6	92.0	94.0	6.0	78.0	31.0	23.6	76.0
3.	580.0	140.0	1:6	93.0	92.0	8.0	77.0	25.0	18.8	75.0
4.	570.0	151.0	1:6	92.0	95.0	5.0	80.0	31.5	25.2	80.0
5.	585.0	160.0	1:6	95.0	94.0	6.0	78.0	30.5	22.5	75.0
कंट्रोल (Control)							**कुल जोड़**	**145.50**		
6.	592.0	255.0	1:1	55.0	45.0	55.0	41.0	15.0	6.0	45.0
7.	588.0	246.0	1:1	62.0	50.0	50.0	45.0	18.0	9.0	50.0
							कुल जोड़	**33.00**		

(Brood fish) को प्रजनन के लिए नर्सरी तालाबों में छोड़ा जाता है। प्रजनन के समय (During breeding season) नर्सरी तालाबों के पानी का रासायनिक विश्लेषण भी किया गया जो मुख्यतः बायोकैमिकल ऑक्सीजन डिमांड (BOD), पानी की ऑक्सीजन (DO), पी.एच. (pH), क्लोराइड की मात्रा (Chlorine contents), विद्युत चालन (Conductivity), फॉस्फेट, नाईट्रेट तथा सलफेट की मात्राओं का भी विश्लेषण किया जाता है।

रूपांतरित तकनीक द्वारा प्रजनन में न सिर्फ कुल बहुप्रजकता में बढ़ोतरी देखी जाती है अपितु कुल निषेचित अंडो की प्रतिशत मात्रा भी ज्यादा पाई गई। जहाँ पर पुरानी प्रचलित तकनीक (1:1) द्वारा कुल बहुप्रजकता 55-62 प्रतिशत व कुल निषेचित अंडे 45-50 प्रतिशत देखे जाते है, वहीं पर रूपांतरित तकनीक (1:6) में इनकी प्रतिशत क्रमशः 90 से 95 एवं 92 से 95 देखी गई। कुल अनिषेचित अंडे रूपांतरित तकनीक (6.0-8.0 प्रतिशत) से पुरानी तकनीक से अधिक (50-55 प्रतिशत) अधिक पाए गए (तालिका)। इस तकनीक द्वारा अंडों की संख्या एवं बाद में उनसे प्राप्त "जीरा" मछली की संख्या भी पुरानी प्रचलित तकनीक के मुकाबले लगभग दुगनी पाई गई। अतः हम कह सकते है कि पुरानी प्रचलित तकनीक द्वारा प्रजनन कराने से मादा मछली की प्रजनन शक्ति को पूर्ण रूप से इस्तेमाल

नही किया जाता है और रूपांतरित तकनीक द्वारा हमें 30 से 40 प्रतिशत अधिक सफलता मिलती है। इस रूपांतरित तकनीक द्वारा मछली उत्पादक किसान, अधिक मछली बीज उत्पादन करके अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकते है।

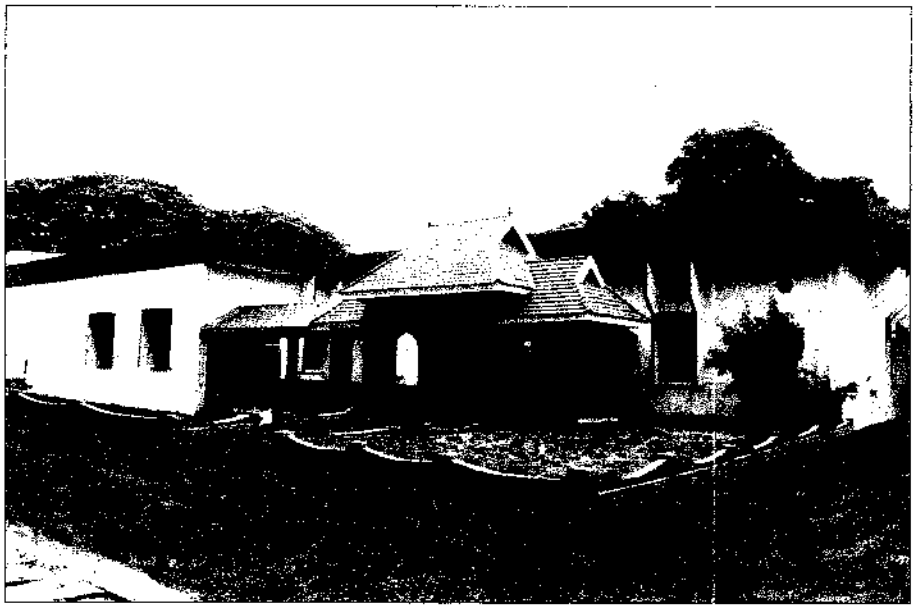

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र (एटिक)

सूचना तक पहूँचना उसका विकीर्णन तथा स्वीकरण या प्रयोग एक विकास पद्धति के विविध आयाम होते हैं। अनुसंधान संगठनों द्वारा विकसित की गई कई उपयोगी प्रौद्योगिकियाँ उन्हीं के चार दीवारों में रुकी पडी है। इस संदर्भ में सी एम एफ आर आइ के कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र माने एटिक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को सज्ज है।

एटिक ऐसा एक एकजालक पद्धति है जिसके ज़रिए मांगकर्ता संस्थान की प्रौद्योगिकीय उत्पादों, निदान सेवाओं और अन्य सूचनाओं तक आसानी से पहूँच सके और आपसी विनिमय कर सके।

संपर्क का पता

मैनेजर एटिक

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान

टाटापुरम डाक घर, कोचीन - 14, केरल.

टेलेफोण : (0484) 394867, 391407

फाक्स : 91-484-394909

ई मेल : <cmfriatic@rediffmail.com>

वेब : http.www.cmfri.com / cmfri_atic html.

समुद्री मोती संवर्धन तकनीक

आर. जगदीश, बोबी इग्नेश्यस और ए.सी.सी. विक्टर
केंद्रीय समुद्री मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान, मंडपम क्षेत्रीय केंद्र, त. नाडु

भूमिका

अनादिकाल से संसार के विभिन्न प्रान्तों से प्राकृतिक मोतियों को विदोहित किया जा रहा है। भारत में इन बहुमूल्य मणियों को दक्षिण के गरम मसालाओं के साथ विदोहित तथा निर्यात किया जाता है। भारत में पाए जानेवाले मोती ओरियंटल पेर्ल्स (Oriental Pearls) नाम से जाने जाते हैं और इन मोतियों की माँग संसार के अन्य प्रदेशों के मोतियों से अधिक है। भारत में, मोती का उत्पादन करनेवाला जीव मुक्ता शुक्ति मुख्यतः दो गल्फों में पाये जाते हैं, वे हैं- गुजरात का गल्फ ऑफ कच्छ (Gulf of Kuch) और तमिलनाडु का गल्फ ऑफ मान्नार (Gulf of Mannar)। 1961 तक मुक्ता शुक्ति स्रोतों को बराबर खोजे गये और क्रमानुसार यह मात्स्यिकी नाशग्रस्त होते गये। सी.एम.एफ.आर.आइ ने 1972 में टूटिकोरीन के वेप्पलाडी में एक क्षेत्रीय प्रयोगशाला के साथ मुक्ता शुक्ति संवर्धन पर बहुविध अनुसंधान प्रारंभ किया। सी.एम.एफ.आर.आइ के निरंतर परिश्रम के फलस्वरूप मोती संवर्धन तकनीक को विकसित किया गया और 1973 में स्वतन्त्र रूप से संवर्धित मोती का उत्पादन साकार हुआ। आगे के अनुसंधानों ने मोती संवर्धन के अन्य मार्मिक पहलुओं को उजागर किया और यह क्षेत्र सूचना संपुष्ट बन गये और तकनीक को त्रुटि रहित बनाया गया। मोती उत्पादन संवर्धन के तकनीक के विकास होने पर कुछ उद्यमी मोती संवर्धन को संयुक्त उद्यम कार्यक्रम बनाने के उद्देश्य से आगे आये। सी.एम.एफ.आर.आइ ने भी स्फुटनशाला में मुक्ता शुक्ति के बीज उत्पादन के तकनीक को त्रुटिहीन बनाया। आगे का विवरण भारतीय परिप्रेक्ष्य में मोती संवर्धन तकनीक का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है।

न्यूक्लियस का रोपण

मोती उत्पादन के लिए उपयोग की जानेवाली जातियाँ तथा स्रोत

भारत में मुख्य रूप से छः जाति के मुक्ता शुक्ति पाये जाते हैं। वे हैं - *पिंक्टाडाफ्युकाटा* (Pinctada fucata), *पी. मरगारिटिफेरा* (P. margaritifera), *पी.खेमनिटिज़ी* (P.chemnitizii), *पी.सुगिलाटा* (P.sugillata), *पी. अनोमियोयिटस* (P. anomioides) और *पी.अट्रोपरपरिया* (P. atropurpurea). प्रथम जाति भारत में आम रूप से पाये जानेवाला है और वाणिज्यात्मक कृषि की दृष्टि से सबसे अनुयोज्य भी है।

मोती संवर्धन के तकनीक

शुक्ति का चयन

रोपण के लिए शुक्ति चयन मोती संवर्धन उत्पादन का पहला कदम है। फार्म (Farm) से शुक्तियों को लाया जाता है, उस में पाए जानेवाला अन्य जीवों को निकालके साफ किया जाता है और जननग्रन्थि की अवस्था को परखा जाता है। शुक्ति कभी भी ऊंजिंग (oozing) अवस्था में नहीं होना चाहिए। तंदुरुस्त परिपक्व शुक्ति ही रोपण के लिए योग्य हैं।

पर्यनुकूल बनाना

रोपण के लिए सबसे पहले उसको उस काम के लिए उपयुक्त बनाया जाता है जिसके लिए शुक्ति को प्रत्येक तरीके से एक प्लास्टिक ट्रे में रखा जाता है। शुक्ति अपने आप खुल जाता है। अगर ऐसा नहीं होता है तो पानी में थोडा सा मेंथोल मिला लिया जाता है। मेंथोल शुक्ति को उत्तेजित करता है और नाली अपने आप खुल जाता है। मेंथोल की मात्रा, डूबे रहने का समय आदि मुक्ता शुक्ति की स्थिति पर निर्भर करता है।

ग्राफ्ट टिश्यू की तैयारी

एक ही झुंड से शुक्तियों को चुन लिया जाता है और नाली खोलकर उसकी मांटल टिश्यू (Mantle tissue) का निरीक्षण करके और उसकी संवेदनात्मकता को परखकर स्वास्थ्य स्थिति की जाँच की जाती है। शुक्ति को फिर छोड दिया जाता है और मांटल टिश्यू को काट दिया जाता है और ग्राफ्ट टिश्यू को तैयार करने के लिए सुव्यवस्थित किया जाता है। आम तौर पर ग्राफ्ट टिश्यू को 2 वर्ग से. मीटर के आकार से काटा जाता है और शुक्ति में रोपण करने तक इयोसिन स्टैन (eosin stain) के साथ समुद्री जल में रखा जाता है।

रोपण

मोती उत्पादन का सबसे प्रमुख और निर्णायक प्रक्रिया न्यूक्लियस का रोपण है। इसकेलिए अत्यंत कुशलता एवं सावधानी की ज़रूरत है। शुक्ति के नालों को हल्के से खोलकर उसे शुक्ति स्टेंड (oyster stand) में रखा जाता है। शुक्ति के नीचे के भाग में एक छेद किया जाता है चर्म के नीचे के भाग से एक टणल (tunnel) शुक्ति की जननग्रंथी की ओर खोदा जाता है। फिर एक न्यूक्लियस कप की सहायता से अपेक्षित आकार के न्यूक्लियस को सावधानी से पहले बनाये गये रास्ते से जननग्रंथी में डाला जाता है। उसके तुरंत बाद जननग्रंथी में एक ग्राफ्ट टिश्यु (graft tissue) भी डाला जाता है और न्यूक्लियस में यथास्थान रखा जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान यह ध्यान रखना चाहिए कि ग्राफ्ट टिश्यु का बाह्य भाग हमेशा न्यूक्लियस को छूते रहें। न्यूक्लियस का समुचित आकार शुक्ति के आकार और स्वास्थ्य को देखकर ध्यानपूर्वक निश्चित किया जाता है। अगर शुक्ति न्यूक्लियस के भार को छेलने में सक्षम और बडा है तो एक ही में बहुरोपण संभव है।

उपशमन

रोपण के तुरंत बाद शुक्तियों को एफ.आर.पी टंकियों में स्थानांतरित किया जाता है। बहते जल की सुविधा दी जाती है और उपशमन के लिए लटके हुए ट्रे/पिंजरे में रखा जाता है। साधाणतः यह तीन दिन केलिए किया जाता है। तीन दिन की परिरक्षा के बाद शुक्ति अपनी साधारण अवस्था में आ जाती है और चीर फाड का घाव भरना शुरू हो जाती है। चीरफाड के बाद न्यूक्लियस की अस्वीकृति, शुक्ति की विनाशिता आदि का निरीक्षण किया जाता है और स्वस्थ शुक्तियों को चुनके मोती उत्पादन के लिए फार्म में प्रतिरोपित किया जाता है।

फार्म का परिपालन

मुक्ता शुक्ति की कृषि, कृषि स्थान को ध्यान में रखकर अनुयोज्य तरीकों को अपनाकर किया जाता है। संवर्धन पिंजरों को 'राक' या 'फ्लोटिंग राफ्ट' में लटकाकर यह किया जा सकता है। कृषि में शुक्ति की अधिक अतिजीवितता और तन्दुरुस्त वृद्धि के लिए सही संग्रहण

मुक्ता शुक्ति फार्म - 'रक्स'

सधनता का ध्यान रखना आवश्यक है। पालन के समय जीव और पिंजरों को साफ करना अत्यंत ज़रूरी तथा समय-समय पर यह किया जाना चाहिए। फार्म का निर्माण करते वक्त वे लम्बे समय तक चलने के लिए उसके ऊपर प्रतिसंक्षारी तथा प्रतिफौलिंग पेंट (anti corrosive and anti fouling paints) का एक आवरण दिया जाता है।

रोपण के बाद-पालन

न्यूक्लियस रोपण के बाद पालन साधारणतः 8-9महीनों तक किया जाता है। हालांकि यह समय प्रत्येक समुद्र में पालन क्षेत्र के प्रचलित पर्यावरणीय स्थिति के आधार पर बदल सकती है। जापान जैसे शीतोष्ण देशों में संवर्धन समय 2-2 1/2 सालों तक बढ जाती है। संवर्धन समय (काल) के बाद शुक्ति को किनारे पर लाया जाता है और पैदावार के लिए प्रयोगशाला पहूंचाया जाता है। मोतियों का पैदावार शुक्तियों को कम नुक्सान पहूँचाते हुए शुक्ति की नालियों को खोलकर और मोतियों को दिक देते हुए किया जाता है। ऐसे खोले गये शुक्तियों को अपने स्वास्थ्य वापस पाने के लिए तथा पुनः इस्तेमाल के लिए फिर से फार्म में स्थानांतरित किया जाता है। पैदावार किये गये मोतियों को फिर तैयार किया जाता है, वर्गीकृत किया जाता है और विपणन किया जाता है। ●

आलंकारिक मछली व्यापार-अनंत साध्यताएं

दुनिया में सिंगपोर को आलंकारिक मछलियों के निर्यात केलिए पहला स्थान है। होंगकोंग, मलेशिआ, थायलान्ड, फिलिप्पीन्स, श्रीलंका, आदि देश भी इसके निर्यात से विदेशी मुद्रा कमाते हैं। भारत में आलंकारिक मछलियों के निर्यात केलिए अनंत साध्यताएं होने पर भी भारत इन देशों से पीछे हैं। हाल ही में नबार्ड द्वारा तैयार की एक रिपोर्ट व्यक्त करता है कि आलंकारिक मछलियों के प्रजनन और व्यापार से भारत आगामी पाँच वर्षों के अंदर 30.45 करोड रुपयों की विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है। अब देश के प्रमुख आलंकारिक मछली व्यापार केंद्र पश्चिम बंगाल है जहाँ मूल रूप से मछली प्रग्रहण से यह व्यापार चलाया जाता है। पूर्वी और उत्तर-पूर्वी राज्यों के हाऊरा, हूग्ली आदि स्थानों में करीबन 500 मछली प्रग्रहण यूनिट काम कर रहे हैं। निरंतर पकड से मछलियों की उपलब्धता में कमी हो सकती है। इसलिए नबार्ड इन संपदाओं के टिकाऊपन केलिए प्रग्रहण मात्स्यिकी से पालन मात्स्यिकी की ओर मुड जाने का सलाह दे रहा है और नबार्ड ने अन्य संगठनों के सहयोग से इसकेलिए मोडल योजनाएं भी तैयार की है।

- फिशिंग चाइम्स से साभार

विभिन्न अवस्था के झींगों और मछलियों को खिलाने के लिए बडी मात्रा में जीवित खाद्यों का संवर्धन

एस. पलनिचामी
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, मंडपम क्षेत्रीय केंद्र, त. नाडु.

प्रस्तावना

ताल संवर्धन में झींगों और मछलियों के भोजन में जीवित खाद्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषकर झींगों और मछलियों के डिभंकावस्था और किशोरावस्था में। प्रमुख जीवित खाद्य है *आर्टीमिया सालिना,रोटिफर ब्राखियोनस प्लिकालिटिस* और शुद्ध जल क्लोडोसरान *मोइना जातियाँ*।

आर्टीमिया

आर्टीमिया पुटियों को सुखाकर छाना हुआ समुद्र जल में (खारापन-30-35%) 1 ग्राम/लिटर के हिसाब से डाला जाता है। अवश्य मात्रा में वायुसंचारण और प्रकाश प्रदान किया जाता है जो भ्रूणीय विकास को उत्तेजित करता है। 18-36 घंटों तक समुद्री जल में जलयोजन के बाद स्वतंत्र रूप से तैरती नौप्ली (अंडा और डिम्भ के बीच की अवस्था) को पकडा जाता है।

नौप्ली को पकडकर एक प्लास्टिक या सिमेंट टेंक में 1000सं/लि के हिसाब से डाला जाता है। जब तक 12-14 दिनों में जवान नौप्ली वयस्क नहीं बन जाते तब तक संवर्धन टेंक का खारापन क्रमिक रूप से 80% तक बढाया जाता है।

वयस्क आर्टीमिया 10-12 मि. मी बडे होते है और उनका शरीर दीर्धाकृत होता है। वक्ष स्थान पर 11 जोडे उपांग होते है और शिरोस्थान पर आँखें भी होती है। अंडे डिम्भाशय में उत्पन्न होते हैं और डिम्भवाहिनी द्वारा एक खास प्रकार के थैली में स्थानांतरित किया जाता हे। पुरुष

प्रौढ़ आर्टीमिया का चित्र

आर्टीमिया स्त्री आर्टीमिया से मिलकर अंडे देते है। जीवित अंडे, जो विशेष प्रकार की थैली में रखे जाते हैं नौप्ली में बदल जाते हैं और हर पाँच - छह दिनों में पानी में छोडे जाते हैं।

उच्च खारापन (12% से ज्यादा) और कम ओक्सिजन मात्रा जैसे अपसामान्य परिस्थितियों में ब्रूड-पौच के सुषिरों से क्लोरिन के निर्गमन से अंडे बेकार सिस्टों में बदल जाते हैं। ये सिस्टें टेंक के पार्श्व भाग में चिपके रहते हैं। इसे इकट्ठा करके सुखाकर बंद पात्रों या खारा पानी में भविष्य के उपयोग के लिए 6-8 महीनों तक रखा जा सकता है।

संवर्धन टेंक में छोडे गये जवान आर्टीमिया 10-12 दिनों में वयस्क बन जाते है। वयस्क आर्टीमिया तीन महीने तक ज़िन्दा रहते है और हर 4-5 दिनों में 100-180 जवान आर्टीमिया छोडे जाते हैं। यह संवर्धन परिस्थिति पर निर्भर है। भागिक रूप से पानी को बदलकर और वयस्क आर्टीमिया

को पकडकर निरंतर बडी मात्रा में संवर्धन किया जाता है। क्लोरल्ला,टेट्रसलामिस,ईस्ट और जीवाणु (bacteria) जैसे एककोशीय शैवाल खाद्य के रूप में आर्टीमिया को दिया जाता है।

1982 में कम लवणयुक्त हेट्रोसेक्स कालिफोर्णियन स्ट्रैन (Hetrosex Californian strain) पुरुष और उच्च लवणयुक्त पार्तनोजनिक बोम्बे स्टैन (Parthenogenic Bombay Strain) स्त्री आर्टीमिया से मिलाकर संकर जाति के आर्टीमिया को विकसित किया गया।

F1 पीढी से कम लवणयुक्त पार्तनोजनिक स्त्रीयों को हटाया जाता है और समुद्र जल को फोर्मलिन से जीवाणुरहित करके बडी मात्रा में संवर्धन किया जाता है।

हेट्रोसेक्स स्टैन स्त्री गण हर सत्र में 50% पुरुषगण को पैदा करते हैं और अनिषेचित (unfertilized) अंडे अवच्छिन्न हो जाते हैं। इसलिए संवर्धन उसके उच्चतम स्थिति पाने के लिए पार्तनोजनिक स्ट्रैन से भी अधिक समय लगता है। इसलिए पार्तनोजनिक स्ट्रैन का संवर्धन प्रयोगशाला में करना ही उचित है।

रोटिफर

झींगों और मछलियों के शैशवावस्था में उन्हें खिलाने के लिए बडी मात्रा में युरोहनैल रोटिफर (Brachionus plicatilis) के संवर्धन का एक तकनीक 1979-80 में विकसित और प्रयोग में लाया गया।

रोटिफरों का स्टोक संवर्धन समुद्रजल या खारापानी जैसे प्राकृतिक परिस्थिति में होता है और शुद्ध संवर्धन प्रयागशाला में उप-संवर्धन द्वारा किया जाता है।

छाना हुआ समुद्रजल 50 टन क्षमतावाला टेंक में पम्प किया जाता है। और मूँगफली खली (250 ग्राम), यूरिया (10 ग्राम) और सूपरफोस्फेट से उर्वर बनाया जाता है। उसी दिन 5-10 लि/टन के हिसाब से क्लोरल्ला को टेंक में डाला जाता है और दूसरे दिन 500 सं/लि के हिसाब से रोटिफरों को छोड दिया जाता है। संवर्धन के आरंभ से भरपूर वायुसंचारण प्रदान किया जाता है।

क्लोरल्ला मुकुल खिलाने से रोटिपर द्रुतगति से अंडजनन करते हैं। डिंभाशय में अंडे विकसित होते हैं और अंडधानी (ब्रूड-पाँच) में इकट्ठित किये जाते हैं। 8-10 घंटों में ही ये जवान हो जाते हैं और अंडजनन करते हैं। जवान रोटिफर 16-18 घंटों में ही वयस्क बन जाते हैं और अंडजनन करते है। वयस्क रोटिफर एक समय में 6 अंडे अपने अंदर रखते हैं और एक-एक करके छोड देते है। इस प्रकार से संवर्धन परिस्थिति के अनुसार संवर्धन 5-7 दिनों में ही अपने उच्चतम अवस्था में पहूँच जाते हैं जो $4\text{-}5x10^5$ रोटिफर/लिटर होते हैं। ये रोटिफर 25 से 40% तक के खारापन और 26-34°C के तापमान में ही जिंदा रहते है।

सुबह जब रोटिफर जल के ऊपर रहते हैं तभी उनको पकडा जाता है। इसकेलिए 60 मैक्रो मेश (Micro mesh) नेट का इस्तमाल करते है। पकडे गये रोटिपरों का संस्करण करके छाना हुआ समुद्रीजल से धोया जाता है और तुल्य मात्रा में 10% ग्लिसरीन मिलाकर फ्रीज़र में शीतीकरण के लिए रखा जाता है। इससे इसको कभी भी इस्तमाल किया जा सकता है या समुद्रजल में धोने के तुरंत बाद खाद्य के रूप में दिया जाता है।

रोटिफरों की अधिकतम सांद्रता,ओक्सिजन की कम मात्रा और खाद्य की कमी जैसे प्रतिकूल परिस्थिति में रोटिफर पुरुष रोटिफर को जन्म देते है। यौन प्रत्युत्पादन से निष्क्रिय पुटियाँ बनाये जाते हैं और ये पुटियाँ संवर्धन टेंक के नीचे जम जाते है। इनको अवसाद के साथ पकडकर ,सुखाकर 3-4 महीने तक संभाला जा सकता है और बिना किसी डर के कहीं भी ले जा सकते है। सुखाये गये पुटियों को समुद्रीजल में 36-48 घंटों तक जलयोजन के बाद पकडा जाता है।

पकडे जाने के बाद 1/3 परिमाण जल बदलकर और वातावरण को कार्बणिक ऊर्वरकों से संपुष्ट बनाकर, जो शैवाल मुकुलों को संपुष्ट करता है, निरंतर संवर्धन साध्य बनाता है। •

सिंचाई व्यवस्थाओं के साथ मछली पालन का एकीकरण - एक नया व्यवस्थित दृष्टिकोण

डॉ. के. पलनिसामी, इंजीनियर सी. मयिलसामी, जी. धनलक्ष्मी, जे. डास्वमंड मेनका, आ. गणेश कुमार एवं विनुप्रिया

पानी तकनीकी केन्द्र, तमिलनाडु कृषि विश्व विद्यालय कोयम्बत्तूर, त. नाडु.

भूमिका

सिंचाई व्यवस्थाओं के अंदर मछली पालन जो कभी कभी एक तरह का उत्पादन अथवा पालन माना जाता है, करीब दो हज़ार सालों के पहले से ही प्रचलित एक व्यवसाय है। यद्यपि यह कभी लिखित रूप में नहीं दर्ज हुआ है तथापि धान के खेतों में खासकर, भूमध्य रेखा के नजदीक के प्रदेशों में यह व्यापक रूप में फैला हुआ था। इस शताब्दी में थल पर उगाये जानेवाले धानों की प्रगतिशील प्रबन्ध एवं जलीय आयोजनों को सफलतापूर्ण उत्पादन के मांगो की पूर्ति, दोनों को एक साथ सामना करना आसान नहीं था। पर धान उत्पादन का एकीकरण इस वातावरण को पूर्ण रूपेण बदल दिया हैं। अलावा इसके, पिछले 50 सालों से पानी को बांधकर अथवा नदियों की रास्ता को घुमाकर, उस पानी से सिंचाई के प्रबंध तेजी से बढ गये है पर इन व्यवस्थाओं के अंतर्गत मछली - उत्पादन ने उसी अनुपात में प्रगति नहीं की है। अत: इस दिशा में एकीकरण की गयी व्यवसाय की सफलता के बारे में जांच पड़ताल करना चाहिए।

सिंचाई व्यवस्था के स्तर पर ही मछली उत्पादन की प्रगति का एक व्यवस्थित दृष्टिकोण जो इस एकीकरण को एक लाभदायक व्यवसाय बना देगा, प्रस्तावित किया जाता है। सिंचाई व्यवस्थाओं की सृष्टित सभी मछली उत्पादन क्षेत्र, इस एकीकृत मछली उत्पादन व्यवस्था के अंतर्गत रखे जा सकते है। सिंचाई में काम आने वाले स्वयं सिंचे गये खेत पडोस में स्थित तालाब या मछली के सब तरह के शरणालय, सभी जगहे मछली उत्पादन एवं मछली पालन के लिए उचित स्थान हैं। मछली उत्पादन केन्द्र जो अस्थायी रूप में कार्यरत है, उनमें से अच्छे नमूने लेकर स्थायी जल केन्द्रों में सुरक्षित किये जा सकते हैं। पालित मछलियों को इस तरह के केन्द्रों में परिवर्तन करना या तबादला करने का एक लचोली तरीका साध्य है। उदाहरण के लिए, जहां पानी मात्र एक सीमित अवधि केलिए नालों में वितरण किया जाता है, वहाँ सिंचाई के नालों में मछलियों को पिंजरबद्ध करते हुए प्राप्त कर सरोवरों में सुरक्षित कर सकते हैं।

संसार भर में धान की खेती की सिंचाई फैली हुई है। खाद्य पदार्थों के उत्पादन बढाने में 17% सिंचाई होती है और उसके द्वारा संसार के खाद्यान्न की एक तिहाई का उत्पादन होती है। सिंचाई व्यवस्था में मछली उत्पादन उतना ही पुराना है जितनी खेती है।

एकीकरण के कई स्तरों में मछलियों की खेती करने के बारे में व्याख्याएं एवं विश्लेषण मिली है। (रइउल एण्ड जाँग 1988-कोस्छों-पियर्स एन्ड सोमारवोटो 1990; हेलर 1994, मथियास चार्लस वै ह. 1998) सभी सिंचाई व्यवस्थाओं में मछली की खेती करने में अडचनें इसलिए आई है कि एक न एक जरूरी पदार्थों का न मिलना तथा, सभी उचित विशेषताओं की कमी रहना। पर चीनवालों के हाल के दृष्टिकोण में उस व्यवसाय में हिम्मत बंधानेवाली सूचनाएँ दीख पडती है। इनमें नये सरोवरों के मछली व्यवसाय, धान की खेती एवं तालाबों के मछली व्यवसाय के साथ एकीकरण

किया गया है। सरोवरों के बंद में, तथा पिंजडों में मछली उत्पादन करने में। पी.आर. सी। चीना में बृहद फलप्राप्ति मिली है। ठीक अनुपात में इनपुटों को लगाने से मछली पालन एवं खेती, सिंचाई व्यवस्था में साध्य है। (रिडिउंग मिडलन 1991) चीन मिश्र, एवं इंदोनेशिया में धान एवं मछली की खेती बडे पैमाने में लागू है। धान की खेती करने वाले किसानों द्वारा रूपाइत कीड़ नाशिनी तरीका अपनाये जाने से, खेतों में बहुत प्रगति उत्पन्न हुई है। (हलवार्ट-1998) अतः प्रगति की संभाव्यता भी बढ गयी है। चौधरी 1995।

यह लेख, सिंचाई व्यवस्थाओं में एकीकरण दृष्टिकोण द्वारा मछली पालन के लिए एक ढांचा प्रस्तुत करता है। धान उत्पादन के लिए। खासकर उनकेलिए मात्र जो सिंचाई व्यवस्थाएं है, उन पर ध्यान केंद्रित है। इन व्यवस्थित योजनाओं में कई योजनाओं को सफलताएं मिली है। फिर भी कई तकनीकी बाध्यताएँ है।

सिंचाई : संसार भर का चित्र

लगभग 240 मिल्लियन हे-क्षेत्र व 17 फीसदी जमीन, जो दुनिया भर में खेती लगाए गये है, पानी से सींचे जाते हैं, और दुनिया के खाद्यान्न में एक तिहाई को उत्पन्न करते हैं, फिलहाल, दुनिया के सिंचाये जानेवाले क्षेत्र के लगभग तीन चौथाई भाग, विकासोन्मुख देशों में है। (01 1997। कास्टा-फियर्स और सोमरवाकटो ने (1987) आक्लन किया कि, केवल एशिया में मात्र 2,00,000 वर्ग मील का क्षेत्र अपने में बृहद सरोवरों से निहित है। जब 1000 हे. क्षेत्र की सिंचाई होती है, तब हर एक क्षेत्र जिसका विस्तार 1000 हे. क्षेत्र है, उसके लिए, 2.5 कि मीटर लंबी नालाएँ, और उनसे चार गुना उसी लंबाई की नालाएं बनाई जाती हैं। रेड्डिंड मिडलन (1991) के अनुसार साल 2000 में एशीया में लगभग 2000 मिलियन हे. क्षेत्र की जमीन के लिए, 5,00,000 कि मीटर लंबी बडी नालाएँ, और दो मिलियन कि मीटर लंबी छोटी नालाएँ, खोदी गयी होंगी। कई नालाएँ और नदियाँ भी, सिंचाई व्यवस्था में एकीकरण किये जाते हैं, जिससे मछली खेती के उपयुक्त जलक्षेत्र का विस्तार बढ़ जाता है।

संक्षिप्त ब्योरा

फलदायक प्रयोग जो इस दिशा में आरंभ काल से किये गये, उनका विवरण इस लेख में दिया जाता है। यह लेख, लोवर भवानी परियोजना, पुरानी नालों की व्यवस्था, जो भवानी नदी के किनारे बनी सिंचाई के नालों में लगे पिंजरों में पाले गये टिलापिया, ग्रास एवं सिल्वर, की बडी हुई मछली और आई.एम.सी. मछली आदि की उन्नति, बचने की संभाव्यता आदि पर विवरण देता है।

सामग्री एवं तरीका

तमिलनाडु के लोवर भवानी परियोजना में परियोजना का स्थल चयन किया गया। निम्न स्थानों पर प्रयोग किये गये।

1. प्रयोग का स्थल - 1, वाणीपुत्तर के नजदीक भवानी बेसिन के पुराने तरीके का नाला - अरक्कनकोटै से छठी मील क्षेत्र पर।

2. प्रयोग का स्थल - 2; पुगमपाडी के पास का नाला। लोवर भवानी परियोजना नाला-तिरसठवीं मील क्षेत्र पर।

3. प्रयोग का स्थल - 3; मुत्तूर के पास - लोवर भवानी परियोजना नाला - 112 वीं मील क्षेत्र पर. यह व्यवस्था 18,400 हे. क्षेत्र को तीन पास्परिक नालाओं द्वारा पानी देती है। इन पर उनका पारंपरिक अधिकार है। इसके अलावा, 1950 में बना एल. भी. पी. नाला के 78,500 हे क्षेत्र भी इसके अंतर्गत है, इन स्थलों में पुराने और नये नालों के पानी की गहराई, बहाव की तेजी एवं पानी की मात्रा का आकलन किया गया कि पानी को रोके बिना बहते पानी में मछली की खेती संभव है या नहीं।

इस सिंचाई व्यवस्था में दो अंग है; 2 पुराने नालाएँ

जिनमें अरक्कनकोट्टै, तडप्पल्ली एवं कालिंगशयन निहित है, जिनसे 18,400 हे. क्षेत्र सिंचे जाते है। भवानी नदी से इसको पानी पहुँचाया जाता है। नया भाग वह है जो एल, भी. पी पुकारा जाता है। पुराने पैतृक अधिकार द्वारा, यह अधिकार सुरक्षित किया जाता है कि पुराने नालों को हर साल 10 महीने पानी पहुँचाया जाएगा जिससे 250 फीसदी प्रगति उत्पादन में होने की संभावना भी। यहाँ धान, गन्ना, हल्दी, केला जो बहुत पानी का माँग करते हैं, की खेती करते हैं।

लगभग 78,500 हेक्टयर क्षेत्र एल भी. पी नाला के द्वारा समृद्ध हुई है। यहाँ पानी इतना प्राप्त है कि हर एक नाला, हर एक दूसरा वर्ष पानी प्राप्त करता था। अलावा इसके, दो मौसमों में पानी का वितरण हुआ। बरसात में लगातार वितरण एवं दूसरे मौसम में बारी बारी से।

एल.भी.पी नाला

एल.भी.पी नाला 200 कि मीटर लंबी एक अनियमित नाला है। इस में सात नियमन यंत्र हैं। उसके तट की चौडाई 33.5 मीटर से 4.2 मीटर तक है और गहराई 32 मीटर से 10 मीटर तक है। शुरुआत के स्थान में नाले की क्षमता 66.5 3/5 थी, बहाव की तेज या गति 0.5 M/s से 0.7 M/s तक भी, पर ध्यान में आया कि यह संकेतिक तेज है, जब कि वास्तविक तेज प्रतिबंधन में परिवर्तन होता है। (सारणी -1)

एल.भी.पी नाला तीन भागों का बना है। प्रारंभिक भाग अरच्चलर तक है। जिसकी चौडाई 101.9 कि मीटर है, यहाँ पानी गहरा है और यथावत 0.7/की गति से बहता है। मध्य भाग 143.4 की.मी. तक का है। वह औसत आकार का है, और जरा मंद गति से बहता है, फिर भी मछली पालन के लिए उपयुक्त साधन मिश्रित है। अंतिम भाग जो बहुत छोटा और आम तौर पर एक मीटर की गहराई से भी कम गहराई में बहता है, मछली पालन के लिए कम ही उपयुक्त जान पड़ता है। पर पहला निर्धारण यह है कि सिंचाई व्यवस्था त्रुटियुक्त होगा, और पिंजरबद्ध पालन व्यवस्था के लिए पानी की गहराई कम होगी। इस अंतिम भाग को निकालने पर भी, एल. भी.पी. नाला की 140 कि. मीटर से लंबी और कुल 450 हे. चौडे क्षेत्र मछली पालन केलिए साध्य क्षेत्र है।

एल.भी.पी नाला, पिंजडों में मछली पालन के लिए उपयुक्त है या नहीं, इस निर्णय पर पहुँचने के लिए समयबद्ध आंकडे, जिनमें गति एवं गहराई का विवरण होते है, लेने की जरूरत है उसके लिए दैनंदिन आंकडे पी.डब्लियु.डी (1991-2000) से ली गयी है, एल. भी. पी नाले में पानी के आवती बहाव की आंकडे 1983-2000 के लिए इकट्टे की गयी हैं।

पुराना नाला

एल.भी.पी. व्यवस्था के अंतर्गत, पुराने नालो में अरक्कन कोट्टे, ताडपल्ली एवं कालिंगरायन) साल के दस महीनों में लगातार पानी पाता था। कोडिवेरी बांध में भवानी नदी के दोनों किनारे, पहले दो स्थानें याने कि अरक्कनकोट्टै एवं तादुपल्ली का आरंभ स्थान एक साथ स्थित है। इन नालों का संकेतिक विस्तार का विवरण जो पी. डबिल्यू. डी से प्राप्त है, सारणी-2 में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है। भवानी नदी के निचले भग में कालींबरायन नाला आरंभ होता है। उसकी लंबाई 90 कि.मी. है। यह ताडपल्ली नाला के समस्तर का माना जाता है।

अरक्कनकोट्टै नाले की दो शाखाएँ हैं। पहुँच के स्थान तीन है। पहले दो स्थान 27.7 कि.मी. तक मछली पिजडों को स्थापित करने लायक दीख पडे। ताडपल्ली नाले में भी दो शाखाएँ तीन मुख्य पहुँच के साथ है और 36 कि.मीटर तक पिजडों को स्थापित करने लायक दीख पडतें है। शायद इससे आगे के भाग छोटे और प्रवाह भी विश्वासलायक नहीं है। अतः उनके छोड देने पर इन दोनों नालों की लबाई में 64 कि.मी. तक मछली पालन के लिए उपयुक्त दीख पडे। अर्थात पूर्ण लंबाई की 58% जो जलतट

के लगभग 100 हे. क्षेत्र में पालन साध्य है।

बहाव तथा गहराई को समय समय पर जाँच पडताल करने से ही यह आकलन किया जा सकता है कि इन पुराने नालों में मछलीपालन साध्य है या नहीं। इसलिए दैनंदिन गहराई का आंकडा (1991-2000) पी. डबिल्यु डी एवं डब्लियु.आर.ओ. से संकलित किया जाता है। अरक्कनकोट्टै तथा ताडपल्ली नाला का जल बंटवारे का आंकडा (कोडिबेरी बांध से) 1983 - 2000 तक के लिए इकट्ठा किया गया है। हर एक स्थल पर तैरनेवाले 28 पिंजडे स्थापित किए गये। शोध के लिए चुने स्थल एक और दो में 1x1x1.3 मी विस्तार के, कयूब रूप के पिंजडे रखे गये, क्योंकि यहाँ पानी गहरा है। तीसरे स्थान में लंबे पिंजडे 2x1x7 मी विस्तार के लगाये गये क्योंकि यहां पानी गहरा नहीं है।

पिंजडे बनाने के लिए मज़बूत पोलितलीन से बने नेटलन सामग्रियाँ का इस्तेमाल किए। ये पिंजडे तट पर स्थित रस्सियों के साथ हर एक पिंजडे के बीच 1.5 फीट से बांधे गये।

कट्ला, रोहु और मृगल (मछली उत्पादन) तथा टिलपिया, ग्रास और सिलवर (मछली संरक्षण) के लिए भिन्न भिन्न घनत्व में पालित गये। प्राकृतिक तथा अत्युत्तम खाद्य से खिलाने पर भी सिल्वर मछली की वृद्धि तथा उत्तरजीविता में होनेवाले प्रभाव पर अध्ययन किया।

मछलियों की रोज़ स्थानीय चावल के छिलके एवं कसावा आटा मिलाकर 10% bwt/day दिया गया मछलियों को पिंजडों के अंदर बंदी थैलियों में खाद्य दिया गया।

पिंजडे रोज निकालने केलिए अशुद्ध चीजों एवं, अंदर के मल को साफ किए गये। हर पक्ष में मछलियों की उन्नति का आकलन नियमित रूप से लिया गया, तदनुसार खाद्य में भी परिवर्तन किये गये।

सभी स्थलों में पिंजडों के बीच के पानी का स्वरूप भी नियमित रूप से आंका गया ताकि, जल में मिला प्राणवायु, ph, आबहवा, कुल चंचल हठ पदार्थ, और दृढ पदोर्थ, कुल अलकलानिटी आदि के भिन्न पारामीटर का संशोध कर सकें।

सारणी 1 : यथावत जलशक्ति एल.भी. पी नाला का पारा मीटर

पहुँच कि.मी + मी	तट चौडाई - मी	गहराई (मी)	गति (मि/से)
0+000 - 53+800	32	2.6	0.72
53+800-86+200	27	2.6	0.70
86+200-101+900	20	2.6	0.68
101+900-119+600	17	2.1	0.65
119+600-143+400	7	1.8	0.61
143+400-181+300	6	1.5	0.59
181+300-200+400	4.5	1.1	0.52

सारणी -2 : यथावत जलशक्ति पारामीटर पुरानी नाला के लिए

नाला	पहुँच कि मी + मीटर	तट चौडाई (मी)	गहराई (मी)
अरक्कनकोट्टै	0+000-10+900	6	1.6
	10+900-27+700	6	1.2
	27+700-32+300	2	0.7
ताडपल्ली	0+000-8+000	15	2.3
	8+000-24+000	12	2.1
	24+000-36+000	10	1.8
	36+000-65+500	7	1.5
	65+500-77+400	5	1.3

सारणी -3 : तीन स्थानों में पिंजडों मछली भंडार की योजना

मछली का प्रकार	पिंजडों की संख्या	भंडार शक्ति का धन	औसत % उत्तरजीविता	उत्तरजीविता की मात्रा	तीन महीनो की औसतवृद्धि निरीक्षण
टिलापिया	4	300	99.0	98-100	50
सिल्वर	4	100	95.5	80-100	नगण्य
सिल्वर (खाह नहीं)	4	100	98.6	94-100	नगण्य
ग्रास	4	300	99.5	99-100	15-20
कटला	4	1000	09.0	0-19	4-5
रोहू	4	3000	03.0	0-08	4-5
मृगल	4	3000	12.0	0-34	4-5

सारणी -4 : तीन स्थलों में आकलन किया औसत जलशक्ति पारामीटर

शोध स्थल	DO $mglit^{-1}$	PH	आबहवा डिग्री सिल्शियस	TVS $mglit^{-1}$	TDS $mglit^{-1}$	TDVS $mglit^{-1}$	TSS $mglit^{-1}$	कुल अल्कलैनिटी
1	4-6.5	7- 8.5	26-31.0	114.4	111.1	84.4	15.5	2.7
2.	359.0	7-10.0	27-30.0	126.7	126.7	76.7	32.9	3.2
3.	4.5-8	8.10.0	26-29.5	113.3	111.1	84.4	14.8	3.0

चर्चा एवं निर्णय

एल.भी.पी. नाले में मछली उत्पादन के लिए 140 कि.मी. तक व्यापक गुंजाइश है। अरक्कनकोट्टै नाले में 20 कि मीटर तक है। कुल क्षेत्र 450 है क्षेत्र और 40 हे. क्षेत्र, पानी के बंटवारे के दिनों में मछली खेती के लिए उपयुक्त हैं। एल.भी.पी. नाले के एवं अरक्कनहोट्टै के दूसरे प्रदेशों में जाल परकोटा बनाकर, मछली उत्पादन दिया जा सकता है।

जहाँ मछली वृद्धि के लिए पिंजडे रखे गये अलग-अलग स्थलों में वृद्धि की मात्रा में अंतर था। 63 वाँ मील में वृद्धि ज्यादा थी, शायद इसका कारण नमी है। समस्त रूप में टिलपिया की वृद्धि संतोषजनक था। खाद्य से पालित और अनपालित सिल्वर में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि नहीं थी। इस मछली के पोने ने भी उत्तरजीवितता कम दिखाया था। भिन्न स्थलों में महत्व-पूर्ण अंतर नहीं था। पहले हफ्ते में रोहू एवं मृगल के बीच अधिक मृत्यु संख्या दीख पडी। पर पोनों में एक महीने की अवधि के बाद ही मृत्यु संख्या दीख पडी जिससे यह संकेत मिलता है, बहुत पानी में पोनों के भण्डारण करने के पहले, उनके स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाए।

जलगुण के पारामीटर दिखाते है कि, हर एक स्थल के पिंजडे में अंतर नहीं है। स्थलों के बीच विलीन ऑक्सिजन अथवा अबहवा में अंतर नहीं था। वाणिपुत्तूर और एल. भी.पी स्थलों के बीच महत्वपूर्ण अंतर पालन में दीख पडा।

एल, भी, पी एवं अरक्कनकोट्टै नालों का पानी, पिंजडे में मछली उत्पादन के लिए उपयुक्त है।

बाधाएँ

1. कुछ स्थलों में नाला तक के पहुँच में कठिनता दीख पडती है।
2. खाद्य ओर पिंजडे की सामग्री महँगा है।
3. मछली उत्पादन के लिए उचित समय पर "मछली" को न प्राप्त होना एवं महँगाई एक बडी समस्या है।
4. सांप और जलजन्तुओं से संरक्षण करना पडता है

क्या आप जानते हैं ?

महा समुद्र इसके समृद्ध एवं विविध प्राणिजातों के लिए विख्यात है। समुद्री जीवों के कुछ रिकार्ड नीचे दिये जाते है:

सबसे बडा तिमि : नील तिमि, *बेलनोप्टीरा मस्कुलस*

मादा : 33.27 मीटर 190 टन आकलित भार

नर : 32.64 मीटर (दोनों को 1926 में शेटलान्ड द्वीप के निकट से पकडा गया)

सबसे बडी मछली : तिमि सुरा, *राइनोडोन टाइपस* 59 फीट, थायलान्ड में 1919 में पकडा गया

सबसे छोटी समुद्री मछली : दक्षिण पसफिक के समोआ में देखी गई *शिन्डलेरिया प्रीमच्युरस,* 12-19 मि मी लंबाई, 2 मि ग्रा भार

सबसे तेज़ गति वाली मछली : सेइल फिश, *इस्तियोफोरस प्लाटिटीरस* : 68.18 मी प्र घं

सबसे मंद गति वाली मछली : समुद्री घोडा 0.01 मी प्र घं

सबसे बडी समुद्री तारा : *इवास्टेरियस एकिनोसोमो* 96 से मी व्यास, भार 5 कि ग्रा., उत्तर पसफिक से पकडा गया

सबसे छोटी समुद्री तारा : *लेप्टीकास्टर प्रोपिनकस* 1.83 से मी कुल व्यास

सबसे गहरी समुद्री तारा : 7,630 मीटर की गहराई से पकडी गई *एरमिकास्टर टेनेब्रारियस*

सबसे भारी मोलस्क (और सबसे भारी अकशेरुकी) : सबसे भारी जयन्ट स्क्विड (*आर्किटयूथिस प्रिन्सेप्स*) को वर्ष 1878 में पकडा गया। इस का एक 'आर्म' (टेन्डकिल) 35 फीट लंबाई का था, यह आकलित किया जाता है कि इस जीव का भार लगभग 4000 पाउन्ड था।

सबसे बडी जेली फिश : उत्तर अटलान्डिक में देखा गया *सयानिया आर्टिका,* इस केबेलके आरपार का दूर 7 फीट 6 इंच और टेन्डकिल 120 फीट का था।

सबसे बडा समुद्री शैवाल : जयन्ट केल्प कहे जाने वाला भुरा शैवाल *माक्रोसिस्टिस पाइरिफेरा*, इसकी लंबाई 54 मीटर, कालिफोर्निया तट के जयन्ट केल्प जंगल में पाया जाता है।

वी. कृपा, सी एम एफ आर आइ से साभार

जल जंतु पालन में पोषण

आर. पालराज और इमेल्डा जोसफ
केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन, केरल

जल जन्तु पालन में सब से अधिक खर्च भोजन केलिए होता है। यह परिचालन लागत के 60% से ऊपर है। इसलिए उचित व्यय के उचित प्रकार का भोजन सूत्रीकरण जल जन्तु पालन में बहुत आवश्यक है। सर्वोत्तम परिवर्तन प्रगुणता (एफ सी आर) और उत्पादन पाने के लिए सूत्रित भोजन सर्वोत्तम संयोजन और निम्नतम खर्च से देना चाहिए। अधिकांश कृष्य जाति की पौष्टिक माँग के ज्ञान सालों के मत्स्य पोषण गवेषण से प्राप्त हुए हैं। संबन्धित जाति के जीव शास्त्र एवं पाचक शरीरविज्ञान का उचित ज्ञान फलीभूत भोजन सूत्रीकरण केलिए उपयुक्त हुए है। भोजन में प्रोटीन की मात्रा सब से उच्च माने 30 से 45% अनुमानित किया है। झींगों को यह 35 में 45% के बीच में चाहिए मत्स्य एवं कवचप्राणियों को अपने सामान्य बढती वृद्धि और पुनरुत्पादन के लिए प्रोटीन भोजन मौलिक अमिनो अम्ल के रूप में मिलाना चाहिए। यह मान लिया गया है कि जल जन्तु को स्थलचर जन्तु से अधिक प्रोटीन माँग है। प्रोटीन की एक अच्छी रूप रेखा में सब दस मौलिक अमिनो अम्लों का संयोजन जन्तु की माँग के अनुसार होना चाहिए। लिपिडों की माँग 5 से 10% के बीच मैं है। स्टेरोल, स्टेरोइड, हार्मोन का अग्रभूत है, जिसके ज़रिए भिन्न शरीरिक क्रियाएँ जैसे बढे हुए क्रस्टेशिया में केंचुली उतार एवं मछलियों में जनन ग्रंथि परिपाक होते हैं। ऊर्जा प्रदान करने में आहार में लिपिडों का महत्वपूर्ण स्थान है साथ ही साथ फैटी आसिड, स्टीरोल, फोसफोलिपिड और वसा विलीन वैटमिनों का भी हैलि अनसैचुरेटड फैटी आसिड माने उच्च असंतृप्त वसा अम्ल (HUFA) मस्तिष्क और स्नायु में फैटी अम्ल का सूचित आहार से करते हैं क्योंकि मत्स्य इन्हें संश्लेषण नहीं करते है। मौलिक फैटी अम्ल में लिनोलीक, लिनोलेनिक,

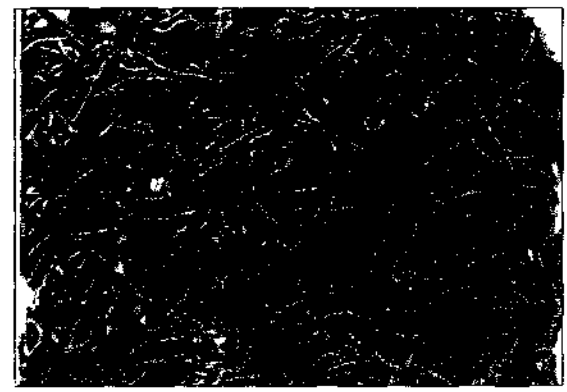

सूत्रित झींगा खाद्य

अराकिडोणिक, ऐकोसापेन्टनोइक एवं डोकसाहेक्सनोइक अम्ल सम्मिलित है। आसानी से प्राप्य हाइली अनसाचुरेटड फाटी आसिड स्त्रोत है मत्स्य तेल। जल जन्तु भोजन में कारबोहैड्रेट मोनोसाकरेड नहीं, बल्कि, पोलिसाकरैड, जैसे स्टार्च, ग्लैकजन आदि रूप में संपूरण करते है। विटामिन जो जल जन्तु भोजन में भिन्न स्तर में अनिवार्य है, जिसका अभाव अपूर्ण संलक्षण दिखाएगा। पालन करनेवाले जीवों के सामान्य स्वास्थ्य और भिन्न क्रियाओं के लिए भोजन में खनिज एवं सूक्ष्ममात्र धातु भी अनिवार्य है। कैल्सियम, पोटैशियम, फोस्फरस, मैग्नीशियम, सोडियम एवं गन्धक मत्स्य एवं क्रस्टेशियन पोषण में अवश्य खनिज हैं। अनिवार्य सूक्ष्ममात्र तत्व हैं, लोहा, जस्ता, ताँबा, मैगनीज़ निक्कल, सेलीनियम, सिलिकोन, टीन, वैनेडियम, फ्लूरिन एवं कोबाल्ट। एक संपूर्ण भोजन में इन मुख्य घटकों के साथ भोजन स्थिरता के लिए बाईन्डर, अट्रैक्टन्ट, वृद्धि उत्तेजकें, प्रति आक्सीकार आदि भी योग करते हैं। माँस को रंग प्रदान करने के साथ करोटिनोइड को मत्स्य एवं क्रस्टेशियन में भिन्न क्रियाएँ हैं। करोटिनोइड आहार से पाना अवश्य है,

क्योंकि, इसे जन्तु अपने से संश्लेषण नहीं करता है। अस्टासान्तिन एवं कान्तासान्तिन दो स्वाभाविक करोटिनोइड हैं, जो मछली के माँस को लाल से नारंगी रंग देते हैं। संश्लिष्ट करोटिनोइड भी प्राप्य हैं और व्यापक रूप से यह मत्स्य भोजन में प्रयुक्त हैं।

जल जन्तु भोजन में मुख्य भोजन संघटक है मछली चूर्ण (फिष मील) जो सबसे महंगा प्रोटीन स्रोत है। जलजन्तु भोजन में फिष् मील का उपयुक्त बदलाई के लिए गवेषण कर रहे हैं। जैव प्रौद्योगिकी गवेषण से मुख्य भोजन संघटक व्युत्पाद किए है। उन में आरगानिक सेलीनियम, यीस्ट कोश भित्ति संघटक, किण्वकें, करोटिनोइड, HUFA एवं प्रोटिनेटड् खनिज सम्मिलित हैं। ये संघटक वृद्धि अनुपात एवं भोजन क्षमता बढाते है, और विसर्जन अपशेष कम करके प्रदूषण से बचाते हैं। समुद्र भोजन संसाधन में होनेवाला अपशोष, उप पकड माँस एवं अस्थिचूर्ण से बनाए खाद्य प्रोटीन, तेलहन प्रोटीन, एक कोश प्रोटीन आदि परिवर्तिक प्रोटीन स्रोत हैं। ठोस अवस्था किण्वन से समुद्री एवं खारा पानी सूक्ष्मजीव (जीवाणु या कवक) को उपयोग करके प्रोटीन, कारबोहैड्रेट, कैटिन और अन्य सस्ते कृषि औद्योगिकी अपशेष को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ के रूप में बदलने को मुख्य ढकेलना दे रहे हैं। यह प्रौद्योगिकी प्रमाणित करता है कि यह सस्ता है और इसके द्वारा पालन तल को श्रम से संवर्धन करके सरल प्राचनीय रूप का सफल विश्वास किया जा सकता है। जलजन्तु भोजन अध्यवसाय में भावि कार्यसंपादन सूक्ष्मजीवी से हुए भोजन प्रौद्योगिकी से प्रत्याशित करते है। सस्ते संघटक को सूक्ष्मजीव परिचालन द्वारा इन्जाइम क्रिया से परिवर्तन करके उच्च गुणता युक्त जल जन्तु भोजन विकसित करना संभव है। जलजन्तु भोजन में जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पालन हुए जीव का असंक्राम्य स्थिति के उत्तेजन में सुधार लाया जा सकते हैं। हाल में जब जल जन्तु पालन में रोग प्रधान समस्या है, तब सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी से स्थायी समाधान ढूँढ निकाला जा सकता है।

समुद्री जीवों से केंसर की दवा

राष्ट्रीय मात्स्यिकी संस्थान में अमेरिकी अनुसंधेताओं के सहयोग से समुद्री जीवों से केंसर की दवा विकसित की जा रही है। यह उपलब्धि मानव राशि केलिए अत्यंत उपयोगी साबित होगी। दो परियोजनाओं में टेक्सास विश्वविद्यालय के अनुसंधेता यह काम कर रहे हैं पहली परियोजना में सी *हेअर* जो *सी स्लग* की एक उपजाति है, से अप्लिरोरिन ए (aplyronine A) नामक एक वस्तु के संश्लेषण करने की कोशिश की जा रही है। स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय में चलायी जानेवाली दूसरी परियोजना में समुद्री सूक्ष्मजीव ब्रयोजोआ (bryozoa) से ब्रयस्टाटिन (bryostatin) नामक उत्पाद का विश्लेषण कर रहा है। अमेरिका के कैंसर सोसोइटी के निदेशक क्रिस्टफर विडनेल के अनुसार ये दोनों संयुक्तों से कैंसर की इलाज साध्य है और इनके संश्लेषण समुद्री जीवों के नाश के बिना सिंथेटिक रूप में भी किया सकता है।

-फिशिंग चाइम्स से साभार

हरियाणा में मत्स्य पालन की प्रगति व सम्भावनाएं

आर.के. गुप्ता, एन.के. यादव, के.एल. जैन एवं जी.एस. दिनोदिया
जीव विज्ञान तथा जल कृषि विभाग, चौ0 चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा में मछली पालन का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके बावजूद अभी कुछ समय पहले तक इसको इतना महत्व नहीं मिल सका था कि इसे जीविका चलाने के रूप में अपनाया जा सकता। इसका मुख्य कारण आधुनिक ज्ञान का अभाव तथा पुराने यन्त्रों का प्रयोग है। हरियाणा में परम्परागत विधियों से मछली पालन से लगभग 800 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष उत्पादन लिया जाता था, परन्तु आधुनिक ज्ञान व विधियों के उचित समायोजन से हरियाणा राज्य ने कृषि के साथ-साथ मत्स्य पालन में भी तीव्रता से प्रगति की है। सन् 1966 में राज्य की स्थापना के समय हरियाणा में पंचायतों द्वारा ही मछली पालन का कार्य किया जाता था तथा उस समय राज्य में केवल 58 हैक्टेयर ग्रामीण तालाब जलक्षेत्र में 1.50 लाख मत्स्य बीज का संचय किया जाता था तथा सभी साधनों से केवल 600 टन मछली का उत्पादन ही राज्य में किया जाता था, परन्तु आज मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में हरियाणा राज्य देश में पंजाब के बाद दूसरा स्थान है। वर्ष 2000-2001 के अन्त तक राज्य में 7745 हेक्टेयर से भी अधिक जलक्षेत्र में मछली पालन किया जाता है। राज्य में 1776 लाख मछली बीज का उत्पादन हुआ जिसको संचित करते हुए 33040 टन से भी अधिक मछली का उत्पादन किया गया जिसका अधिकांश भाग अन्य राज्यों में मत्स्य पालकों द्वारा भेजा गया और इस प्रकार अन्य राज्यों की मछली की मांग की आपूर्ति हुई।

आज जहां राष्ट्रीय स्तर पर देश में औसतन प्रति हैक्टेयर मत्स्य उत्पादन 2226 किलोग्राम हो रहा है जबकि हरियाणा राज्य में प्रति हैक्टेयर मत्स्य उत्पादन की दर 4044 किलोग्राम हो रही है। कृषि के साथ-साथ हरियाणा

हरियाण के गाँव में आधुनिक तकनीक द्वारा मछली पालन एवं प्रबंध

के कर्मठ, निष्ठावान व उद्यमी किसानों ने मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में अधिक उत्पादन को देखते हुए अपनी निजी भूमि में मछली पालन हेतु तालाब बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया है और अब तक लगभग 3300 एकड़ निजी भूमि में तालाब बनाए जा चुके हैं जोकि राज्य के किसानों का मत्स्य पालन की ओर रूझान प्रकट करता है। हरियाणा के किसानों ने न केवल मछली पालन की तरफ ध्यान दिया अपितु इसकी विविधता की तरफ भी ध्यान दिया है। हरियाणा की भूविविधता को ध्यान में रख कर किसानों ने मत्स्य पालन के विभिन्न आयामों को अन्जाम दिया है, जोकि निम्नलिखित हैं :

(क) झींगा पालन

किसानों ने अपनी आमदनी को बढ़ाने व विविधता लाने के लिए झींगा पालन की शुरूआत की है। हरियाणा के कुछ जिलों के किसान झींगा पालन कर रहे हैं तथा आठ महीने में उन्होंने लगभग 1000 कि.ग्रा. झींगा प्रति हैक्टेयर

प्राप्त किया है। इस कार्य में हरियाणा सरकार, मत्स्य पालन विभाग के द्वारा विभिन्न योजनाओं द्वारा किसानों की सहायता करती है। जब तक तकनीकी ज्ञान का सम्बन्ध है हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक हमेशा किसानों की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं।

(ख) खारे पानी में मछली पालन

हरियाणा में हिसार तथा पड़ोसी जिलों में भूमिगत खारे पानी, जिनमें नमक की अधिकता 8 से 20 ds/m^2 पाई गई है, ऐसे पानी को कृषि तथा मछली पालन के उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा हम मिट्टी में नमक की मात्रा कम करने के अलावा मिट्टी का सदुपयोग मछली पालन के लिए कर सकेंगे। प्रारम्भ में इस प्रकार की प्रणाली (Sub Surface drainage system) पर 25,000 रुपये प्रति हैक्टेयर खर्च करने पड़ते हैं तथा बाद में 5,000 रुपये प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष रखरखाव के लिए खर्च करने पड़ेंगे। दूसरी तरफ यदि नमकीन पानी का उपयोग मछली पालन के लिए किया जाए तो 45,000 से 60,000 रुपये प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष आय के रूप में प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार लवणयुक्त दलदलीय जमीन का उपयोग मछली पालन के लिए किया जाए तो, इस पर होने वाले खर्च को निकालकर भी एक अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है।

(ग) बीज उत्पादन

जहां तक कॉमन कार्प के बीज की बात है, हरियाणा की आज लगभग हर छोटा किसान अपने क्षेत्र में ही उत्पादन कर लेता है लेकिन हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा नई रूपान्तरित तकनीक द्वारा किसान अच्छा व अधिक बीज प्राप्त कर रहा है। मत्स्य बीज उत्पादन की तकनीक व आर्थिकता को ध्यान में रखते हुए हरियाणा के किसानों ने निजी क्षेत्र में 7 चाईनिज़ हैचरीज़ का निर्माण भी किया है ताकि प्रदेश मत्स्य बीज उत्पादन के क्षेत्र में भी स्वावलम्बी बन सके। इसी कड़ी में टोहाना जिला हिसार में एक प्रगति शील किसान ने एक आधुनिक हैचरी लगाई है। इस यूनिट में किसान न केवल अपनी जरूरत को पूरा करता है बल्कि वे अन्य पड़ोसी किसानों की आवश्यकता को भी पूरा करता है। मत्स्य पालकों की 1800 लाख प्रतिवर्ष मछली बीज की मांग है। मत्स्य पालकों को सस्ती दरों पर मछली बीज का वितरण किया जाता है जो कि 65/- रुपये प्रति हजार मत्स्य बीज फार्मों पर तथा 75/- रुपये प्रति हजार मत्स्य पालकों के तालाबों पर पहुंचाने का है।

स्रोत

हरियाणा राज्य में मत्स्य उत्पादन के उत्डतम जलस्रोत उपलब्ध है, जिनमें वैज्ञानिक तरीकों से मत्स्य उत्पादन किया जा रहा है। उपलब्ध जलस्रोतों का विवरण निम्नलिखित है :

क्र. संख्या	विवरण	यूनिट	क्षेत्रफल
1.	तालाब		
	(क) मौसमी	हैक्टेयर	8000
	(ख) पेरीनियल (सदाबहार)	हैक्टेयर	2000
2.	दलदलयुक्त जलक्षेत्र	हैक्टेयर	2000
3.	जलाशय/झीलें	हैक्टेयर	900
4.	नदियां	किलोमीटर	5000
5.	नहरें	किलोमीटर	3600
6.	ड्रैनें	किलोमीटर	3600
7.	माईक्रोवाटर शैड	संख्या	160
8.	भूमिगत खारा पानी	किलोमीटर	28000

प्राकृतिक पानी में मछली पालन

राज्य में मछली पकड़ने के प्राकृतिक साधन अच्छी मात्रा में उपलब्ध हैं, इनमें यमुना, घग्गर, मारकण्डा, टांगरी तथा उनकी सहायक नदियां, नहरें, कृत्रिम व प्राकृतिक झीलें शामिल हैं। इस पानी में मछली पकड़ने के अधिकार प्रत्येक वर्ष सितम्बर मास से अगले वर्ष अगस्त तक के लिए नीलाम किए जाते हैं। प्राकृतिक मछली सम्पदा का

इस पानी में संरक्षण पंजाब फिशरीज़ एक्ट 1914 तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत किया जाता है।

मछली मण्डियों का निर्माण

केन्द्र सरकार की सहायता से हरियाणा राज्य में मछली की बिक्री हेतु मछली मण्डियों का निर्माण फरीदाबाद, पानीपत व यमुनानगर में किया गया है। जहां की थोक व प्रचून बिक्री हेतु समुचित स्थान बनाए गए हैं ताकि उपभोक्ताओं को उचित दरों पर साफ-सुथरी मछली उपलब्ध करवाई जा सके।

हरियाण में आधुनिक तकनीक द्वारा दलदलीय तालाबों में मछली पालन

समुद्री पार्क

भारत में वर्ष 1980 में कछ की खाड़ी (पिरोटन क्षेत्र) में सबसे प्रथम समुद्री राष्ट्रीय पार्क की स्थापना की गई जिसके बाद मान्नार खाडी और दक्षिण आन्डमान के वान्डूर राष्ट्रीय पार्क भी स्थापित हुए, समुद्री पार्क एक सुरक्षित स्थान होता है और कई आवासीय तत्वों के आधार पर इसका प्रबंधन किया जाना चाहिए। इस से आवास, जाति सुरक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान मनोरंजन और वित्तीय उपार्जन जैसे उद्देश्यों को निभाया जाना चाहिए। उपर्युक्त तीनों पार्क सुरक्षित मेखला होने पर भी मूल स्थानों और पार्क की सीमाओं का रूपायन और मानव हस्तक्षेप का नियमन किया जाना आवश्यक है। मालवान - वेंगुरला (महाराष्ट्र तट), मिनिकोय, कवरती, चेनलत, कइमत और कल्पेनी (लक्षद्वीप) में भी समुद्री पार्क तथा सुरक्षित मेखलाओं की स्थापना का प्रस्ताव शुरू किया गया है।

- एन. जी. के. पिल्लै सी एम एफ आर आइ से साभार

भारत की उपास्थिमीन मात्स्यिकी

के.के. जोशी और रेखा जे. नायर
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन, केरल

भूमिका

उपास्थिमीन (elasmobranch) जिसमें सुरा (आरामीन भी) रे फिश याने शंकुश और स्केट्स सम्मिलित है, समुद्री मछली जातियों में सबसे बडी जाति है। उपास्थिमीनों का कंकाल उपास्थि से बना हुआ है और सुराओं की त्वचा पट्टाभ शल्क (Placoid scales) से अंतःस्थापित है और शंकुशों की त्वचा अनावृत और क्लोम छिद्र (gill slit) से युक्त है। ये समुद्र के उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय मेखलाओं में, तटीय समुद्र से महासागर जल तक व्यापक रूप से फैले हुए हैं। इनमें कुछ लंबी दूरी तक प्रवास करते हैं और कुछ बडे बडे समूहों में प्रवास करते हैं।

विभिन्न प्रकार के गिअरों द्वारा उपास्थिमीनों को पकडा जाता है और हाल ही में निर्यात बाज़ार में इनकी मांग और प्रमुखता बढ़ गई हैं।

चार्ट -1 वर्ष 1950-1998 के दौरान विश्व का उपास्थिमीन उत्पादन

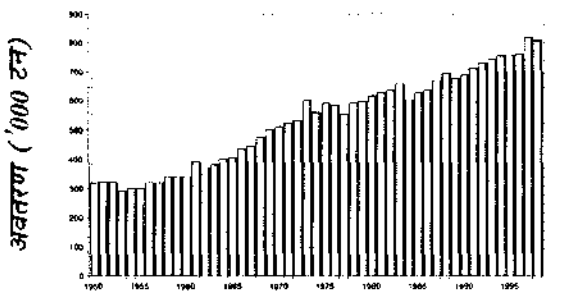

अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

उपास्थिमीनों का विश्वव्यापक उत्पादन वर्ष 1971 में 522,100 मेट्रिक टन था जो वर्ष 1978 में 591,354 मे.ट. तक बढ़ गई और वर्ष 1990 में 687,353 मे.ट. और वर्ष 1998 में 806,066 मे.ट. की तेज़ी वृद्धि हुई (चार्ट 1). अट्लान्टिक महा सागर में उपास्थिमीनों की पकड़ में वर्ष 1971 में 244,100 मे.ट. और 1998 में 302,666 मे.ट. का उतार-चढ़ाव हुआ। स्पेइन, यू एस ए, अर्जन्टीना और फ्रान्स प्रमुख मत्स्यन देश है, इसके अतिरिक्त भारतीय महा सागर से उपास्थिमीनों की पकड में, वर्ष 1971 में 110,000 मे.ट. से वर्ष 1998 में 225,566 मे.ट. तक की दुगुनी वृद्धि हुई और इन्डोनेशिया, भारत और पाकिस्तान पकड में प्रमुख योगदान देनेवाले देश हैं। इन्डोनेशिया, जापान, चीन तथा मेकिसको पसफिक महा समुद्र से साठ प्रतिशत से ज्यादा उपास्थिमीन पकडने वाले प्रमुख देश हैं। पसफिक महा समुद्र में, उपास्थिमीनों की पकड में वर्ष 1971 में 168,000 मे.ट. से वर्ष 1998 में 275,590 मे. टन तक की बढ़ती आकलित की गई। वर्ष 1997 में सभी मत्स्यन क्षेत्रों में से 8,18,473 मे. टन उपास्थिमीनों की पकड हुई। इनमें से उपास्थिमीनों का ज़्यादतर उत्पादन स्पेइन (96,924 मे.ट.), इन्डोनेशिया (95,998 मे.ट.) और भारत से (71,991 मे.ट.) हुआ (चार्ट-2) इस में कुल 66,285,903 मे.ट. समुद्री पकड में 8,06.066 मे.ट. याने 1.21% उपास्थिमीनों का योगदान था (एफ ए ओ, 1998).

वर्ष 1996 में विश्व की उपास्थिमीन पकड का 9% याने 71,062 टन योगदान करते हुए भारत विश्व में दूसरे स्थान पर आया था। वर्ष 1998 में योगदान दिए गए देश थे स्पेइन (65,02; मे.ट.), पाकिस्तान (54,497 मे.ट.), यू एस ए (44,560 मे.ट.), चीन (40,412 मे.ट.), मेक्सिको (36,532 मे.ट.), जापान (34,262 मे.ट.), अर्जन्टीना

चार्ट -2 उपास्थिमीनों का उत्पादन करने वाले कुछ प्रमुख देशों में वर्ष 1996-98 के दौरान हुआ उपास्थिमीन उत्पादन

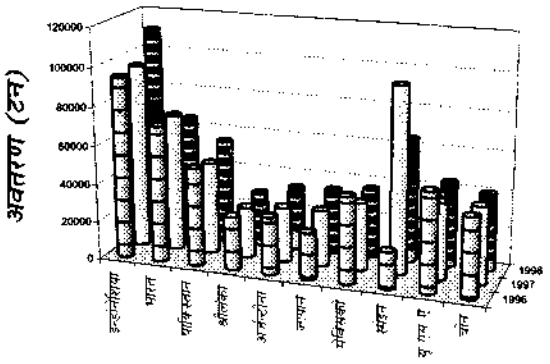

श्रोत : मात्स्यिकी सांख्यिकी 1998 की एफ ए ओ वार्षिक पुस्तक

(33,5/4 मे.ट.) और श्रीलंका (28,500 मे.ट.) (एफ ए ओ 1998).

राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

मात्स्यिकी

भारत में सुरा मात्स्यिकी बहुत पुराने ज़माने से ही शुरू हुई। वर्ष 1854 में पश्चिम तट पर सुरा जिगर तेल की एक छोटी फैक्टरी थी। वर्ष 1870 के दौरान कराच्ची में सिंध तट पर हारपूनन (harpooning) द्वारा सुरा पकड की जाने की सबूतें हैं।

वर्ष 1951-2000 अवधि के दौरान मात्स्यकी मे बढ़ती की प्रवणता देखी गई। वर्ष 1950-61 के दौरान उपास्थिमीनों की कुल पकड 25,000 मेट्रिक टन थी जो वर्ष 2000 में 73,015 टन तक बढ़ गई (चार्ट-3) वर्ष 1961-70 के दौरान तमिलनाडू उपास्थिमीनों की पकड का प्रमुख राज्य था, केरल, आंध्र प्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र में उपास्थिमीनों की पकड में उतार-चढ़ाव की प्रवणता थी। वर्ष 1971-1980 के दौरान गुजरात में पकड 6249 टन से 14,558 टन तक बढ़ गया; तमिलनाडू में वर्ष 1971 में 16,913 टन से 1974 में 23,025 टन की वृद्धि और 1980 में 15,442 टन की घटती अंकित की गई। महाराष्ट्र में उक्त अवधि के दौरान विशेषत: 1977-79 के दौरान पकड में वृद्धि दिखाई पडी। अस्सी के वर्षों के दौरान गुजरात में उपास्थिमीनों की पकड 10,000 टन से 15,000 टन के बीच परिवर्तित थी; महाराष्ट्र में भी पकड में वृद्धि देखी गई। वर्ष 1990-2000 अवधि के दौरान पूरे भारत की उपास्थिमीन पकड का 22,899 टन गुजरात से हुई और दूसरा स्थान तमिलनाडू का था जहाँ पकड 16,766 टन थी। पिछले दशक में केरल, कर्नाटक और महाराष्ट्र को छोडकर सभी राज्यों में उपास्थिमीन पकड में वृद्धि हुई। वर्ष 1998 में भारत में उपास्थिमीनों की, 75,623 मे.ट. की सर्वाधिक पकड हुई। वर्ष 2000 में उत्पादन कुल समुद्री मछली पकड का 2.8 प्रतिशत था। भारत में उपास्थिमीनों की पकड पूरे विश्व में उपास्थिमीनों की पकड-प्रतिमान के समान ही है।

भारत की उपास्थिमीन मात्स्यिकी पश्चिम तट पर गुजरात, महाराष्ट्र और केरल तथा पूर्व तट पर तमिलनाडू

चार्ट -3 वर्ष 1981-2000 के दौरान भारत में उपास्थिमीनों का अवतरण

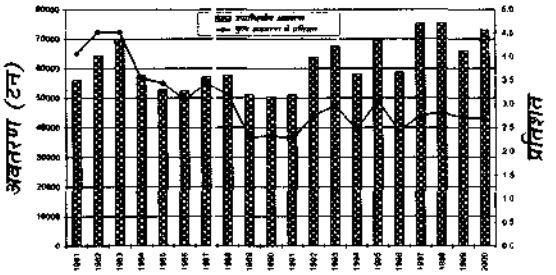

और आंध्र प्रदेश के तटों पर फैली हुई है। उपास्थिमीनों को पूरे वर्ष में पकडा जाता है; सुराओं को कांटा डोर, हारपूनन और ड्रिफ्ट गिल जाल द्वारा 15 से 150 मी की गहराई से; शंकुशों और स्केटों को ट्राल जालों, बोटम सेट गिल जालों और तट संपाशों द्वारा 4 से 150 मी की गहराई से पकडा जाता है (चार्ट-4)

उपास्थिमीनों में, सुराओं की पकड वर्ष 1981 में 59% से वर्ष 2000 में 67% तक बढ़ गई। वर्ष 2000 में गुजरात से सबसे अधिक योगदान (50%) हुआ जिसके बाद महाराष्ट्र (17%), तमिलनाडू (12%), आंध्र प्रदेश (10%) और केरल (3%) आते हैं।

चार्ट -4 वर्ष 2000 में उपास्थिमीनों का अवतरण उत्पादन

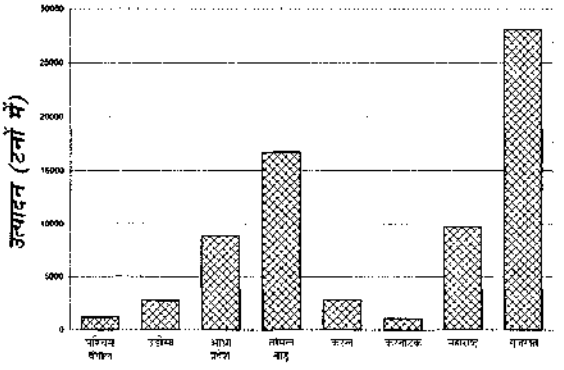

वर्ष 1981-2000 के दौरान शंकुशों की पकड में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ फिर भी वर्ष 1990 में 47% और 1992 में 25% की पकड अंकित की गई है। वर्ष 2000 के दौरान तमिलनाडु से 50% का अधिकतम योगदान हुआ जिसके बाद आंध्रा प्रदेश (16%), गुजरात (12%), उड़ीसा (7%), महाराष्ट्र और केरल (5%) आते हैं।

वर्ष 1981 से 1987 तक स्केटों की पकड में वृद्धि हुई और इसके बाद वर्ष 1993 में तेज़ घटती हुई। वर्ष 2000 में पूरे भारत में पकडे गए 2650 टन स्केटों में गुजरात का सबसे अधिक योगदान (46%) हुआ जिसके बाद आंध्र प्रदेश (21%), महाराष्ट्र (12%), तमिलनाडु और केरल (7%) आते हैं।

गिअरवार पकड

उत्तर पश्चिम क्षेत्र सुराओं के विदोहन के लिए अधिकतः गिल जालों को प्रयुक्त किया जाता है जिनके द्वारा 47.1% पकड की जाती है। इसके बाद ट्राल जालों से 30.85% पकड की जाती है। इस क्षेत्र से ट्राल जालों द्वारा शंकुशों की कुल पकड का 75% पकड संपन्न हुआ। दक्षिण पश्चिम क्षेत्र जहाँ की पकड मत्स्यन धरातल पर आश्रित हैं, में से अधिकतः गिल जालों और कांटा डोर (यंत्रीकृत और अयंत्रीकृत दोनों) द्वारा की जाती है और इन्हें द्वारा 58% सुराओं को पकडा गया। लेकिन शंकुशों और स्केट को ट्राल जालों द्वारा पकडा गया।

उत्तर पूर्व क्षेत्र में सुराओं की अधिकांश पकड मुख्यतः गिल जालों और कांटा डोर द्वारा की गई (93%) जिसमें मात्र गिल जालों का योगदान 75% था। शंकुशों की पकड मुख्यतः कांटा डोर (57%) से की जाती है फिर भी ट्राल जालों तथा गिल जालों का योगदान क्रमशः 19% और 20% था दक्षिण पूर्व क्षेत्र में सुराओं की कुल पकड का 50% गिल जालों द्वारा और 24% कांटा डोर द्वारा संपन्न हुई। शंकुशों की पकड का मुख्य गिअर ट्राल जाल (57.8%) और इसके बाद गिल जाल (30%) थे।

क्षेत्रवार पकड

वर्ष 2000 के दौरान पश्चिम तट से उपास्थिमीनों, जिसका मुख्य भाग सुराएं हैं, का 72% और पूर्व तट से 28% का योगदान हुआ। शंकुशों का उत्पादन पश्चिम तट की अपेक्षा पूर्व तट में अधिक (77%) था। वर्ष 2500 के दौरान भारत में पकडे गए स्केटों का 66% पश्चिम तट का योगदान था।

वर्ष 2000 में उत्तर पश्चिम क्षेत्र से 67% और दक्षिण पूर्व क्षेत्र से 24% सुराओं को पकडा गया। दक्षिण पश्चिम और उत्तर पूर्व क्षेत्रों का योगदान क्रमशः केवल 5% और 4% था, वर्ष 2000 के दौरान शंकुशों की मुख्य पकड दक्षिण पूर्व क्षेत्र (67%) से हुई और उत्तर पूर्व क्षेत्र से 10% पकड हुई। उत्तर पश्चिम से 17% और दक्षिण पश्चिम क्षेत्र से 6% शंकुश पकड हुई।

स्केटों का उत्पादन उत्तर पश्चिम तट पर सबसे अधिक (58%) और दक्षिण पश्चिम तट पर कम (8%) था। दक्षिण पूर्व तट पर स्केटों का उत्पादन 31% और उत्तर पूर्व तट पर 3% था।

बडे पैमाने की मात्स्यिकी में सुरा वर्ग को सम्मिलित करना उचित नहीं होगा क्योंकि सुरा कम संख्या में उत्पादन करती है और बढ़ती बहुत मंद होती है और प्रौढ़ होने में भी काफी समय लग जाता है। इन कारणों से संभरण और फिर से उत्पादन के बीच निकट संबंध होता है। इस वजह से इनका संग्रहण बढ़ाना उचित नहीं होगा और संग्रहण नियमित करना ही उचित होगा।

जाति मिश्रण

मात्स्यिकी में योगदान देने वाली मुख्य जातियाँ नीचे दी जाती हैं : *कारकारिनस लिम्बात्तस, सी. सोराह, सी.डसुमेरी, सी. माक्लोटी, सी. मेलनोटीरस, सी. ब्रेविपिन्ना, सी. हेमियोडोन, राइसोप्रियोनोडोन एक्यूटस, आर. ओलिगोलिक्स, स्कोलियोडोन लाटिकॉडस, गलियोसिरेडो क्युवीरी* और *लक्सोडोन माक्रोराइनस*। भारत के तट पर बडे पैमाने की मात्स्यिकी में धूसर सुराओं (grey sharks) के निकट हामर हेडड सुरा *स्फिर्ना लेवीनी, एस. मोक्कारन* और *स्फिर्ना साइजीना* भी आते हैं। उत्तर पश्चिम क्षेत्रों में ट्राल जाल द्वारा पकडे जाने वाला *स्कोलियोडोन लाटिकॉडस* प्रमुख जाति है। गिल जालों और कांटा डोर द्वारा पकडी जाने वाली बडी सुराओं में *सी. मेलनोटीरस, सी. लिम्नस, सी. माक्लोटी, सी. डसुभेरी, आर. अक्यूटस, एस. लेवीनी* प्रमुख है।

उत्तर पश्चिम तट मुख्यतः सौराष्ट्र तट पर हारपूनन मात्स्यिकी द्वारा तिमि सुरा (whale shark) *रिंकोडोन टाइपस* को पकडा गया है। हाल ही में, तमिलनाडु में मछुआरे गहरे सागर में मत्स्यन के लिए जाते वक्त कभी कभी बाम्बिल शार्क *एकाइनोराइनस ब्रूकस* को भी पकड में मिल जाता है। थ्रेशर सुरा *आलोपियास जातियाँ*, हामरहेड्स *यूस्फिरा ब्लोकी, एस. मोकारन, हेमीप्रिस्टिस इलोंगेट्स*, बाम्बू शार्क और कैट शार्क जैसी कुछ जातियों को विरल रूप से पकडा जाता है। महाराष्ट्र में ट्राल जाल द्वारा की गई शंकुश पकड का 48% *डासियाटिस सुगेई* था।

वर्ष 2000 के दौरान की गई स्केट पकड का लगभग 49% गुजरात का योगदान था। स्केट *रिन्कोबाटस जिडेन्सिस* और *रैनोबाटस ग्रानुलाटस* को गुजरात तट से भिन्न भिन्न गिअरों द्वारा पकडा जाता है।

विपणन

अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार एवं अन्य देशों में खाद्य के रूप में विभिन्न तरह की सुराओं, शंकुशों और स्केटों का प्रमुख स्थान है। यू एस ए, दक्षिण अमरिका और जापान में सुरा मांस लोकप्रिय हो रहा है। वर्ष 1985 और 1994 के बीच ताज़ा, द्रुतशीतित और हिमशीतित सुरा मांस के निर्यात में दुगुनी वृद्धि हुई है। सुरा के पख विश्व के सबसे मूल्यवान खाद्योत्पाद हैं। सुराओं की उपास्थि में होने वाला एक रासायनिक मिश्रण नेत्र रोग (आइ फाटिग) तथा रूमाटिसम जैसे रोगों की प्रभावकारी चिकित्सा में उपयुक्त किया जाता है। यही रासायनिक आग से जल गई त्वचा के स्थान पर कृत्रिम त्वचा के निर्माण के लिए भी उपयुक्त किया जाता है। यह भी देखा गया है कि सुरा उपास्थि का चूर्ण कैन्सर रोग की चिकित्सा में उपयुक्त किया जाता तो है परन्तु उपयुक्त किए जाने के चूर्ण की मात्रा व्यक्त रूप से ज्ञात नहीं हो पाया है।

उपास्थिमीनों में सुरा उत्पादों (मांस, पख, फिन रे तथा हड्डी) की विचारणीय निर्यात शक्यता है और इनका निर्यात-

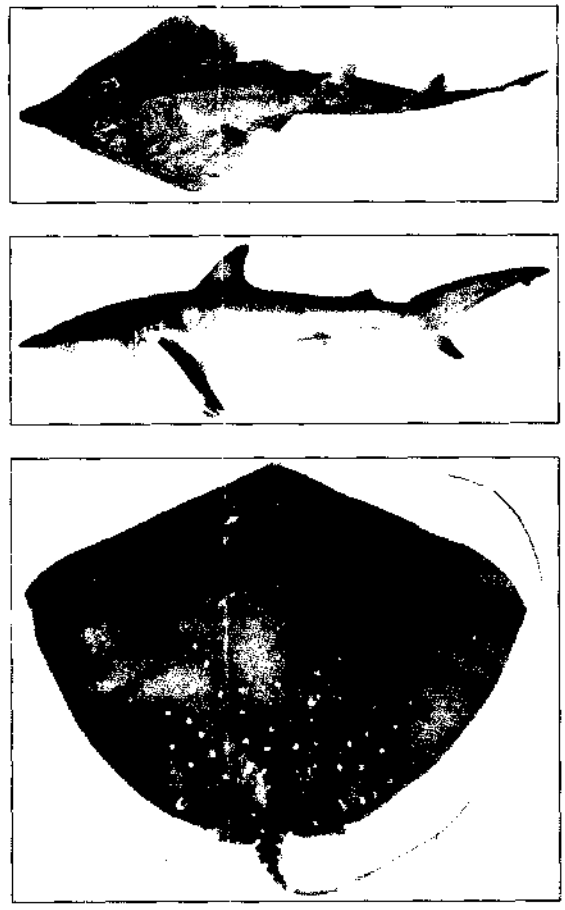

प्रमुख उपास्थिमीन मछलियाँ-गिटारफिश, सुरा और रे

मूल्य वर्ष 1996-97 के 9.5 करोड़ रुपए (273%) से वर्ष 2000-01 में 35.49 करोड़ रुपए तक बढ़ गया (एम पी ई डी ए)

सुखाए गए सुरा पखों का मूल्य वर्ष 1995-99 के दौरान 302-112 टन के लिए क्रमशः 838 लाख रुपए - 445 लाख रुपए था। वर्ष 1995-99 के दौरान 583-617 टन हिमशीतित सुरा मांस का निर्यात हुआ और इसका मूल्य क्रमशः 182-270 लाख रुपए था। भारत से हिमशीतित सुरा मांस निर्यात करने वाले देश हैं चीन (176 टन), होंगकोंग (586 टन), सिंगपोर (107 टन), मलेशिया (47 टन), थायवान (125 टन), थायलान्ड (69 टन) और आस्ट्रेलिया (60 टन), सुखाए गए सुरा पखों के प्रमुख बाज़ार केन्द्र हैं होंगकोंग (38 टन), सिंगपोर (16 टन), यू एस ए (18 टन), चीन (31 टन), यू ए ई (6 टन) और जापान। सुखाए गए सुरा पख रे को मुख्यतः होंग कोंग और सिंगपोर को निर्यात किया जाता है।

भारतीय अनन्य आर्थिक मेखला में शक्य प्राप्ति

भारत सरकार द्वारा नियुक्त कार्यदल ने यह आकलित किया कि महाद्वीपीय शेल्फ से पकडे गए 71,408 टन उपास्थिमीनों में से 45064 टन सुरा, 22658 टन शंकुश और 3686 टन स्केट और 26200 टन वेलापवर्ती सुराएं थे और शेल्फ के बाहर के समुद्र से 97600 टन उपास्थिमीनों की शक्य प्राप्ति हुई। गत पांच वर्षों के दौरान उपास्थिमीनों की वार्षिक औसत पकड केवल 69000 टन थी। अब तक प्राप्त आंकडों से इस सुझाव पर पहुँचते हैं कि भारतीय अनन्य आर्थिक मेखला की उपास्थिमीन संपदाओं (तिमि सुराओं, जिनकी वेरावल तट से लक्षित मत्स्यन द्वारा अविवेकपूर्ण पकड की जाती है और सुरक्षा आवश्यक भी है) का वर्तमान विदोहन अनुकूलतम स्तर तर तक पहुँच गया है।

उपास्थिमीन मात्स्यिकी का प्रबंध

हाल ही में, अट्लान्टिक ट्यूनाओं के परिरक्षण का अंतर्राष्ट्रीय आयोग सुराओं के परिरक्षण कार्य के लिए तैयार हो गया है और सदस्य देशों में से सुरा उप पकड के आंकडों का मॉनीटरन करने लगा है। वर्ष 1994 में संपन्न हुए, खतरे में पडी हुई विश्व प्राणिजात व वनस्पतिजात जातियों के अंतर्राष्ट्रीय विपणन का समागम (CITES) ने उपास्थियुक्त मछलियों की अविवेकपूर्ण पकड की ओर खेद प्रकट किया और एफ ए ओ और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से सुराओं पर आवश्यक जीवैज्ञानिक और विपणन आंकडों का संग्रहण एवं समाकलन करने का अनुरोध किया। विश्व परिरक्षण संघ (IUCN) ने भी सुराओं के परिरक्षण के लिए कार्य योजना बनाई है। वेल्ड वाइल्ड लाइफ फन्ड फोर नैचर (WWF) ने सुराओं के विश्व व्यापक विपणन पर एक प्राथमिक रिपोर्ट प्रस्तुत की है।

भारत सरकार ने अधिसूचना की धारा 3 उपधारा (ii) के खंड - II में उपास्थिमीनों की कुछ जातियों को वन्यजीव (सुरक्षा) अधिनियम 1972 की अनुसूची में रखकर उनपर लगाया गया रोक निकाल दिया है। केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान ने भारत के समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान का एक नोडल संस्थान होते हुए पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार को उपास्थिमीनों पर एक राष्ट्रीय परियोजना का प्रस्ताव दिया है। परियोजना का अंतिम रूप देने की बैठक सी एम एफ आर आइ, कोचीन में 17-18 फरवरी, 2002 को संपन्न हुई जिस में उपास्थिमीनों के विशेषज्ञों ने इनके मात्स्यिकी, जीवविज्ञान एवं परिरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर ज़ोर दिया।

विभिन्न मंचों और बैठकों में यह बताया गया है कि उद्योग द्वारा प्रति क्षेत्र/मौसम के मछली पकड के प्रयास पर आंकडा उपलब्ध नहीं कराया गया है। उपास्थिमीन जैसे मात्स्यिकी जो तटीय समुद्र से महासागर तक व्यापक रूप से फैली गई है, के संबंध में अगर मत्स्यन पोतों द्वारा अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया गया तो संपदा विशेषताओं का निर्धारण संभव नहीं होगा। देश में इस दिशा में प्रयास शुरु करना आवश्यक है। ●

गहरे समुद्र की अपारंपरिक मत्स्य संपत्ति

डॉ.पी.प्रेमलता,
समाकलित मात्स्यिकी परियोजना,कोचीन, केरल

अन्य शीत देशों की अपेक्षा उष्ण क्षेत्र में स्थित भारत के तटीय क्षेत्रों से हमें विभिन्न प्रकार के समुद्र संपत्तियाँ उपलब्ध होती है। उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जाता है जैसे तटवर्ती क्षेत्र से प्राप्त और गहरे समुद्र से प्राप्त । आज हमें मिलने वाले मत्सय प्रकारों की पकड का अधिक भाग तट से करीब 50 मी. गहराई तक के भीतर से है। लेकिन गहरे समुद्र से प्राप्त होने वाली मत्स्य संपत्तियों से साधारण जनता परिचित नहीं है इसी कारण से उनके लिए ये संपत्तियाँ स्वीकार्य भी नहीं है।

यहाँ गहरा समुद्र से यह मतलब होता है कि तट से करीब 200 नॉटिकल मील दूरी में व्याप्त भारत के संपूर्ण नियंत्रण के अधीन रहने वाला क्षेत्र (अ.आ.क्षे)। अगस्त 25, 1976 के बाद इन आर्थिक क्षेत्रों का संपूर्ण अधिकार संबंधित देशों को दिया गया था। साथ ही इन क्षेत्रों के जीव एवं अजीव विभवों का अधिक से अधिक दोहन करने की भारी जिम्मेदारी भी।

गहरे समुद्र के बारे में चर्चा करते समय इन क्षेत्रों से संबंधित अध्ययन का उल्लेखन करना भी समुचित होगा। केंद्रीय सरकार के विभिन्न संगठनों में सेवारत प्रबुद्ध वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों से संबंधित अधिक जानकारी प्राप्त हुई है। इन क्षेत्रों की व्याप्ति, यहाँ के जल जीवियों और उनकी उत्पादन क्षमता आदि के बारे में भी जानकारी उपलब्ध हुई।

आज हमारे तटीय समुद्र में बडे पैमाने में मत्स्य ग्रहण हो रहा है। प्रति वर्ष की उत्पादन क्षमता 200 लाख टन मानी गई है लेकिन इससे अधिक पकड हो रही है। उसी समय अनन्य आर्थिक क्षेत्र के गहरे समुद्र की उत्पादन क्षमता का दोहन उसके आधे तक ही नहीं हो रहा है। इस क्षेत्र की व्याप्ति दो मिलियन वर्ग फीट है और उत्पादन क्षमता 110 लाख टन। इससे यह साफ होता है कि इन क्षेत्रों के अधिक भाग दोहन करने के लिए शेष रहते है। फिर भी एक उल्लेखनीय बात यह है कि तटीय समुद्र के क्षेत्रों की तरह यहाँ अंगीकृत मत्सय संपत्ति एवं उत्पादन क्षमता एक समान नहीं होती। कुछ क्षेत्रों में उसकी उपलब्धता अधिक होती है और कुछ क्षेत्रों में कम। जो पकडा जाता है उसकी आकृति एवं रंग भिन्नता के कारण उसकी भोज्यता पर भी शक है। इसलिए गहरे समुद्र से प्राप्त मत्स्य संपत्तियों के बारे में एक अवधारणा सार्वजनिक लोगों के बीच उपजाने की आवश्यकता बढ़ रही है। कुछ विशेष क्षेत्रों में दिखाए जाने वाले और न दिखाए जाने वाले, इनमें से जो खाने के लिए योग्य है और जो खाने के लिए न योग्य - उसी तरह इन संपत्तियों का विभाजन किया जा सकता है।

एक और समय था जब गहरा समुद्र मत्स्य ग्रहण विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए ही किया गया था। इस संदर्भ में उस किस्म की मछलियों के बारे में बताया जा रहा है जिसे उस समय *ट्राश फिश* के रूप में माना गया था। हाल ही में उसकी प्रचुरता और बढ़ गई। कोची में स्थित समाकलित मात्स्यिकी परियोजना ने अपनी विभिन्न प्रसंस्करण प्रणालियों के जरिये यह साबित किया कि ये मछलियाँ गुणों से भरपूर हैं और उनसे विविध उपयोगप्रद उत्पादन संभव हो सकता है। उसके फलस्वरूप किलिमीन,स्क्विड एवं कटल फिश जैसी महत्वहीन मछलियाँ आम जनता के बीच लोक प्रिय बनीं।। लेकिन अभी भी लोक प्रियता न प्राप्त करने वाली मछलियों के बारे में नीचे बताया जाता है। परंपरागत मत्स्य क्षेत्रों में उसकी अनुपलब्धता के कारण उसका अनुयोज्य कोई स्थानीय नाम ही नहीं होता।

1. बुल्सआई अथवा प्रियाकांथस

बडी आँखों वाली इन मछलियों का रंग लाल है। अरब सागर एवं बंगाल खाडी में उपलब्ध ये मछलियाँ 100 से 200 गहराई में प्रचुरता से उपलब्ध है। इसकी आम लंबाई 15-25 से.मी है।

ये मछलियाँ झुंडों में चलती और इसी कारण से एक ही पकड में टनों की मछलियाँ प्राप्त होती है। मार्च-अप्रैल, अगस्त-सितंबर माहों में प्रचुरता से उपलब्ध होती है। साधारण रूप से ये मछिलयाँ गहरे समुद्र में रहती हैं लेकिन भोजन व प्रजनन के लिए तट की ओर आते समय उसको पकडे जाते है। विभिन्न अध्ययनों ने यह साबित किया कि पौष्टिक गुणों से भर पूर इन मछलियों की मांस स्वादिष्ट भी है। इसका कलेजा विटामिन ए का भंडार है। इसका चमडा धना होने पर भी उसको आसानी से उतार सकता है। सिंगपोर, थाईलैंड,हॉगकोंग आदि देशों में उसकी बडी मांग होती है। हमारे बीच में भी ये मछलियाँ लोकप्रियता हासिल की है।

2. ड्रिफ्ट फिश अथवा *एरियोम्मा इंडिका*

इसका रंग हल्का वयलट से मिश्रित काला है। इसका आकार करंजिडों (वट्टा) के आकार जैसा होता है। उसकी लंबाई 10-15 से.मी है। ये मछलियाँ भारत के तटों में 100-200 मी. गहराई में दिखाने वाली हैं लेकिन बडी संख्या में मुख्य रूप से मंगलापुरम, कोल्लम, तुतुकुडी, विशाखपटनम आदि स्थलों में दिखाई देती है। उसकी मांस नरम एवं स्वादिष्ट होती है। इन मछलियों की तरह 200-400 मी. गहराई में उपलब्ध एक और मत्स्य संपत्ति है इंडियन रफ अथवा *सीनोप्सिस सयनिया* इसकी पौष्टिक गुणता की तुलना आम तौर से उपलब्ध लैक्टेरियस (परवा) के साथ की जा सकती है। 15 से 20 से.मी तक लंबी ये मछलियाँ एक नजर में कोई महत्व नहीं दिखाती है फिर भी सफ़ेद मांस होने के कारण इनसे फिश बॉल, फिश कीमा और फिश मीट पेस्ट जैसे उत्पन्नों का उत्पादन संभव हो सकता है।

समुद्र की 100-200 एम गहराई में उपलब्ध एक अन्य संपत्ति है रूबी फिश अथवा *एमिलिक्सिस निटिडस* उसके लाल रंग की वजह से शायद उसको यह नाम मिला हो। मई-जून माहों में कोल्लम के गहरे समुद्र में प्रचुरता से प्राप्त होती है। उसकी आकृति तारली की जैसी होती है। साधारण रूप से उसका आकार 15-20 से.मी है।

वेड्ज बैंक को केरल के दक्षिण भाग का एक प्रसिद्ध मत्स्यन क्षेत्र माना जाता है जहाँ विभिन्न प्रकार की मत्स्य संपत्तियाँ उपलब्ध है. हाल ही में 50-60 मी. गहराई में प्राप्त एक प्राकार है - बालिस्टिड्स (Balistids)। मुख्य रूप से इसका दो प्रकार होते है - नील रंग से मिश्रित काला एवं भूरा रंग का। चमडा बहुत घना होता है और इसके कारण उपयोग कम होता है। लेकिन आज की स्थिति ऐसी नहीं है। तिरूवनन्तपुरम, विषिंजम और तमिल नाडु के तटीय प्रदेशों में इसका उपयोग अन्य मछलियों की तरह होता रहता है। इसका चमडा सुरा के चमडे की तरह लघु उद्योग के लिए योग्य रहता है।

यह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इसका दोहन उचित रूप में करना अनिवार्य होता है। ऐसा न होने पर भविष्य में मात्स्यिकी क्षेत्र में बहुत बडा नुक्सान संभव हो सकता है।

गहरा समुद्र मात्स्यिकी क्षेत्र के बारे में चर्चा करते समय केरल के दक्षिण पश्चिम में स्थित कोल्लम क्षेत्र का उल्लेखन करना अवश्यक होता है। बहुत अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त कराने वाली झींगा,स्क्विड,कटल फिश के अलावा स्क्वालॉइड (Squaloid) जाति के एक प्रकार का शार्क (सुरा) भी इस क्षेत्र में दिखाई देती है। इसकी मांस में यूरिया का अंश तनिक भी नहीं है। इसके अलावा इसके कलेजे में विद्यमान स्क्वालिन (Suaqline) पदार्थ विशिष्ट गुणों से भरपूर है। इन सबके अलावा गहरे समुद्र में 300-400 मी. गहराई में चमकदार आँखों वाली ग्रीन आई अथवा *क्लोरोफ्थॉल्मस*, *क्यूबीसेप्स*, एपीम्यूला, बाथीगाडस आदि ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी स्वार्मिंग क्रेब्स अथवा *चैरिब्डीस एड्वेड्सी* अधिक मात्रा में दिखाई देती है। इसको सुखाकर चारे के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। समुद्र के नीचे प्रचुरता से उपलब्ध एक और प्रकार है - मिक्टोफिड्स। यह उपलब्ध होने के स्थानों में तैल खनन संभव हो सकता है।

सौराष्ट्र के प्रमुख मत्स्य अवतरण केन्द्र

शोभा जो. किजाकूडन, जो.के. किजाकूडन एवं के.वी. सोमशेखरन नायर
केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, वेरावल क्षेत्रीय केन्द्र, गुजरात

निर्देश

भारत के तटीय राज्यों में सबसे लम्बा समुद्र तट गुजरात का है। देश के समुद्री मत्स्य उत्पादन क्षेत्रों में गुजरात प्रथम तीन राज्यों में एक है, गुजरात के समुद्र जलों में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ एवं समुद्र जीव पाया जा सकता है। गुजरात के 13 रेवन्यु तटीय जिल्ले है। गुजरात के मछुवारों की जनसंख्या 269640 (42125 परिवार) है, जिनमें से 97009 लोग मछली पकडने मे भाग लेते है। गुजरात में 213 समुद्री मत्स्य अवतरण केन्द्र है। 44 केन्द्रों में बन्दरगाह है, जिनमें से 12 मध्य श्रेणी के बन्दरगाह है और बाकी छोटे बन्दरगाह है।

प्रायद्वीप सौराष्ट्र में 6 जिल्ले सम्मिलित है - जुनागढ, पोरबंदर, जामनगर, अमरेली, भावनगर तथा राजकोट। गुजरात की समुद्री मछली अवतरण का 57% जुनागढ और पोरबंदर में से है। गुजरात, और शायद भारत का सबसे महत्वपूर्ण मत्स्य अवतरण केन्द्र - वेरावल जुनागढ जिल्ले में स्थित है। पोरबंदर जिल्ले में दो और महत्वपूर्ण अवतरण केन्द्र है - पोरबंदर और मांगरोल। अर्थात प्रायद्वीप सौराष्ट्र गुजरात की समुद्री मत्स्य अवतरण का प्राथमिक क्षेत्र है।

सौराष्ट्र के कुछ प्रमुख मत्स्य अवतरण केन्द्रों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :-

अमरेली जिला

अमरेली जिल्ले में लगभग 11 मत्स्य अवतरण केन्द्र है, जिनमें से चार केन्द्र जाफरबाद, कोटडा, माढवाड तथा मूल द्वारका महत्वपूर्ण माना जा सकता है। जाफराबाद में मध्य श्रेणी का बंदरगाह है तथा डोल नेट ओपरेशन के लिए यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। मछीमारी कार्यवाही (फिशिंग ओपरेशन) पूरे साल रहती है, परंतु वर्षाकाल के समय इसमें तनिक कमी आ जाती है। बाम्बिल, नोन-पिनेड श्रिम्प, घोल, एनचोवी तथा रिबन फिश जाफराबाद की मुख्य पकड है। गुजरात के कुल मत्स्य अवतरण केन्द्रों में जाफराबाद का योगदान लगभग 3.95% है।

कोटडा, माढवाड तथा मूल-द्वारका के मत्स्य अवतरण केन्द्र छोटे बन्दरगाह है, तथा ये गिल नेट अवतरण केन्द्र है। मछली पकडने के कार्य में मानसून (वर्षाकाल) में कमी आ जाती है-कोटडा में फीता मीन (रिबन फिश), पापलेट (पोम्फ्रेट) तथा सियारनीडस, माढवाड में गेदरा (टुनास) सीयरफिस, पापलेट तथा क्लुपिड्स पकडी जाने वाली मुख्य मछली है। मूल-द्वारका में सीयरफिस, गेदरा, शिंगटी (केट फिश) पापलेट तथा कूलूपिड्स है, इन अवतरण केन्द्रों के राज्यों की कुल समुद्री मछली अवतरण में क्रमश : 0.06%, 0.11% तथा 0.36% का योगदान है।

जुनागढ जिला

जुनागढ जिल्ले में लगभग 16 विख्यात मत्स्य अवतरण केन्द्र है, जिनमें से 8 केन्द्र महत्वपूर्ण माना जा सकता है - वेरावल, हीराकोट, सूत्रापाडा, धामलेज, चोरवाड, नवाबंदर, राजपरा, तथा सीमर। वेरावल का मछली पकडने का बंदरगाह सन् 1956 में विकसित हुआ था और सन् 1962 से ये पूरी तरह से प्रायोगिक बन गया। उस समय यह संपूर्ण बंदरगाह नहीं था। एक समय पर केवल 15 नाव सामान उतारने व चढाने की सुविधा प्राप्त थी। बाद में सन् 1985 में विश्व बेंक प्रोजेक्ट की सहायता से उसे उच्च श्रेणी का स्थान प्राप्त हुआ तथा एक पूर्ण बंदरगाह का दरजा प्राप्त हुआ।

यह बंदरगाह दो अवतरण भागो में बांटा गया है - भीडीया अवतरण केन्द्र तथा पुराना लाइट हाउस अवतरण केन्द्र। भीडीया अवतरण केन्द्र ट्रोल अवतरण का मुख्य स्थल है जबकि गिलनेट तथा हुक लाइन फिशरी मुख्यत : पुराने लाइट हाउस अवतरण केन्द्र पर केन्द्रित है। गिलनेट एवं हुक लाइन मछली पकड कार्यवाही पूरे साल संभाले जाते है। वर्षाकाल के समय इनमें कुछ कमी आ जाती है। सियर फिश (सुरमी), क्लुपिडस, टुनास (गेदरा), करांगिडस, शार्क्स (सुरा), शिंगटी, (केट फिश) सियानिड, रिबन फिश (फीता मीन) तथा पर्चस मुख्य गिलनेट में पकडे जाते है। हुक लाइन मछली में सुरमी, खागा, सुरा, थ्रेड फिन्स तथा लार्ज सियारग्नडोज पकडे जाते है। ट्राल ओपरेशन वर्षाकाल के समय (15 मई से 15 सितम्बर तक) बंद रहते है। वेरावल के ट्रोल फिशरी में मुख्यत: रिबन फिश, सियाएनडोस, नोन-पिनेड श्रिम्पस, लालमाछ्छला पर्चेस, फ्लेट फिशेस, नरसिंगालोलिगो, सिफालोपोडस, कोर्नगिडस इत्यादि है। राज्य के कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में वेरावल की मत्स्य अवतरण का योगदान विभिन्न उपकरणों के द्वारा 26.85% है।

नवाबंदर और राजपरा डोलनेट अवतरण के मुख्य केन्द्र है, जबकि सिमार डोलनेट ओपरेशन का एक छोटा केन्द्र है। राजपरा में कुछ मात्रा में गिलनेट भी ओपरेट किए जाते है मात्स्यकी में पकडे जाने वाले मुख्य वर्ग बम्बिल (बोम्बे डक) नोन पिनेड श्रिम्प, घोल, एनकोवीस, पोम्फ्रटस्, पालवा (ईल्स), रिबन फिश है। केन्द्रों का राज्य की कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में क्रमश : 3.7%, 3.11% तथा 0.07% का योगदान था।

सुत्रापाडा एवं धामलेज गिलनेट मात्स्यिकी के प्रसिद्ध केन्द्र है जबकि चोरवाड और हीराकोट छोटे केन्द्र है। गिलनेट मछली पकड कार्यवाई पूरे साल होती है, यद्यपि, वर्षाकाल के समय इनमें कुछ कमी आ जाती है। अमरेली जिल्ले में मूलद्वारका में एक नई जेटी के निर्माण के परिणाम स्वरूप एक बडी संख्या में नाव धामलेज से मूलद्वारका लाई जाती है विशेषकर वर्षाकाल में। इन केन्द्रों में मुख्य रूप से पाए जाने वाली मछलियों में गेदरा, छापरी, सियाएनडीस, पापलेट, खागा, क्लुपिडस, चिरोन्ट्रीड्स, कोर्नगिडस, थ्रेडफिन्स तथा सुरा सम्मिलित है। सितम्बर - नवम्बर में सूत्रापाडा में स्पाईनी लोब्सटर (शूलीमहाचिंगट) को जाल में फँसाने के लिए एक विशेष ट्रेपनेट फिशरी चलती है। राज्य को कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में इन केन्द्रों का योगदान सूत्रापाडा का 0.41%, धामलेज का 0.27%, चोरवाड का 0.14% एवं हीराकोट का 0.12% क्रमशः था।

पोरबंदर जिला

इस जिले में लगभग 9 मत्स्य अवतरण केन्द्र है जिनमें सात केन्द्र बहुत ही महत्वपूर्ण है। मांगरोल फिशिंग बंदरगाह विश्व बेंक प्रोजेक्ट के अधीन विकसित हुआ था और 1985 में प्रायोगिक हुआ था। पोरबंदर के फिशिंग बंदरगाह 1991 से कार्यरत हुआ था। दोनों बंदरगाह ट्राल नेट तथा गिल नेट फिशरी के महत्वपूर्ण केन्द्र है। हुक लाइन्स भी गिलनेट बोटें द्वारा ओपरेट किए जाते है। गिलनेट तथा हुक लाइन्स फिशिंग पूरा साल चलते है, वर्षाकाल में इनमें कुछ कमी आ जाती है, वह भी विशेषकर मांगरोल में सुरमई, कलुपिडस, टूना, करंजिड, सुरा, खागा, सियाएनीडस, पट्टा (रिबन फिश) थ्रेड फिन्स, तथा पर्चेस आदि मुख्य गिलनेट फिशरी में देखे जाते है। हुक लाइन्स फिशरी से मुख्य रूप में सुरमई, शिंगटी, सुरा, थ्रड फिन्स तथा बडा सियाएनीडस प्राप्त है। ट्रोल ओपरेशन वर्षाकाल (15 मई से 15 सितम्बर तक) में बंद हो जाते है। रिबन फिश, सुश्मई, चिंगट, पर्चेस, फ्लेटफिषश, सिफालोपोडस इत्यादि मुख्य ट्राल मछली है। राज्य को समुद्री अवतरण पोरबंदर तथा मांगरोल क्रमशः 14.02% तथा 7.4% का योगदान है। माधवपुर और नवीबंदर गिलनेट मछीमारी कारवाई के मुख्य केन्द्र है तथा मांगरोलबारा, मियानी तथा शील गिलनेट मछीमारी के छोटे केन्द्र है। मछीमारी कारवाई पूरे साल चलती है। केवल वर्षाकाल में थोडी सी कमी आ जाती है। शील, नवीबंदर और मियानी को नमकीन खाडी में मौसमी मछीमारी की जाती है। जब वर्षाकाल के समय की समुद्र

की स्थिति खराब होने के कारण नियमित मछोमारी बंद हो जाती है। सिल्वर तथा ब्लेक पापलेट, शिंगटी, छापरी, बांगडा, तथा धोमा (सयनिड) के प्रमुख माधवपुर में मछीमारो को अपना योगदान प्रदान करते है। नवीबंदर के मछीमारी में मुख्य रूप से बांगडा, शिंगटी, सुरमई, पापलेट, पर्चस तथा धोमा पाया जाता है। मांगरोलबारा और शील मे पापलेट, कलूपिडस पर्चस, सुरमई तथा धोमा पाया जाता है। इन केन्द्रों में से प्रत्येक केन्द्र का राज्यों की कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में माधवपुर में 0.39%, नवीबंदर में 0.18%, मांगरोलबारा में 0.16%, शील में 0.03% तथा मियानी में 0.03% का योगदान है।

जामनगर जिला

इस जिल्ले में 23 मत्स्य अवतरण केन्द्र है, जिनमें से 14 केन्द्र विख्यात है। इनमें ओखा केन्द्र अति महत्वपूर्ण है। जहाँ ट्रालनेट, गिलनेट और हुक लाईन ओपरेशन में है। रूपेन और सलाया ट्रोल अवतरण केन्द्रों के महत्वपूर्ण केन्द्र है। थ्रेडफिन ब्रीम्स, बाम्बिल, पिनेड श्रिम्प, पैरापैन्योफिशिस, स्टालीफेरा एवं मेटापेनायस, धोमा, रिबन फिश, थ्रेड फिन, क्लूपिडस (हिल्सा) तथा इलास्मोब्रांच्स का इन केन्द्रों में अच्छी संख्या में अवतरण होती है। मल्टीफिलामेंट तथा मोनोफिलामेंट गिल नेट ओखा, रूपेन, सलाया, सिक्का, बेडी, सचना तथा जोडिया से ओपरेट किए जाते है जबकि सरमत में केवल मोनोफिलामेंट गिलनेटस उपयोग में आते है। मल्टीफिलामेंट गिलनेट में बडी मछलियाँ मिलती है जैसे कि प्रोटोनीव्या डायाकैन्थस (घोल) थ्रेड फिन्स, सुरमई, पर्चेस, सुरा, शिंगटी, पापलेट, मल्लेट, छापरी, कर्कट, हिल्सा, केट फिश, सुरा तथा चिरोसैंट्रीइस इत्यादि मछली मोनोफिलामेंट गिलनेट् के अवतरण में विख्यात है। सलाया, रूपेन और बेडी (हुक लाईन) ओपरेशन के प्रमुख केन्द्र है जिनका लक्ष्य मुख्यतः घोल, सुरा, थ्रेड फिन्स, केट फिश जैसी बडी मछलीयाँ है। इन प्रमुख साधनों के अतिरिक्त कोस्ट नेट, तथा फेन्स नेट भी ओपरेट किए जाते है। मल्लेट, सिलाजिनिडस, जरिड्स, कर्कट, एनग्रोलिड्स, कैट फिश लोबस्टर आदि को पकडने लिए "बोई जाल" नामक एक विशेष प्रकार के जाल का प्रयोग किया जाता है। जल-विनोद एवं मछीमारी इन सभी केन्द्रों में सामान्य है - विशेषकर ओखा, द्वारिका प्रशंखे तथा अन्य कवकों के लिए है। सन् 2000-2001 के दौरान खारी खाडी में कर्कट *पोर्ट्नस पेलाजिक्स* के लिए केवल खास मछीमारी थी। जामनगर जिल्ले में कुछ केन्द्रों का योगदान राज्य को कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में इस प्रकार है।

ओखा	- 2.06%
रूपेन-द्वारिका	- 0.83%
सलाया	- 0.59%
बेडी	- 0.45%
सिक्का	- 0.28%

भावनगर जिला

इस जिल्ले में लगभग 11 मत्स्य अवतरण केन्द्र है, जिनमें 7 प्रसिद्ध है। गोधा एक प्रमुख केन्द्र है जहाँ पर हस तथा गिलनेट्स का उपयोग बोम्बे डक एवं चिंगटों को पकडने में होता है। लकडी का तथा एफ.आर.पी. दोनों प्रकार की नाँवों का इसमें प्रयोग होता है और फिशिंग ग्राउन्ड धोलेरा (धोया से लगभग 4 घंटे की यात्रा) में स्थित है। यहाँ फिशरी की एक खास विशेषता यह है कि प्रत्येक मास में 6 दिन पूर्णिमा तथा 6 दिन अमवास्या के ज्वार-भाटा में फिशिंग बंद रहती है। यहाँ की मडस्कीपर (लेवटा) फिशरी प्रसिद्ध है। लगभग 300 व्यक्ति इस प्रवृति में कार्यरत है। गोपनाथ और खुडा में महाचिंगटों को (लाबस्टर्स) पकडने के लिए बोटम सेट काटन यार्न गिलनेट का प्रयोग होता है। पारम्परिक लाबस्टर्स पिट कल्चर जो पहले यहाँ होती थी अब बिना आज्ञा के प्रवेश की समस्या के कारण उन्हें बंद कर दिया गया है। बंबिल, हिल्सा टोली, सुरा, चिरोसैन्ट्रीडज, *ईलीशा मैगालोपेट्रा*, पोम्फ्रटस, रिबनफिश आदि को पकडने के लिए महुवा में गिलनेट् ओपरेट किए जाते है। रीक्स में पुराने गिलनेट टुकडों का प्रयोग करते हुए ट्रैपनेट फिशरी लाबस्टर्स के लिए की जाती है। खारी (नमकीन) खाडी में

श्रिम्प फिशरी के लिए छोटे स्टेक (खुंटे वाले) नेट प्रयोग में लाए जाते है। गुजरात के समुद्र तट पर राज्य की कुल समुद्री मत्स्य अवतरण में कुछ अवतरण केंद्रों का योगदान इस जिल्ले में निम्न प्रकार है।

गोधा	- 0.23%
महुवा	- 0.09%
भावनगर	- 0.07%
सरतानपुर	- 0.07%
ओसारा	- 0.03%

प्रायद्वीप सौराष्ट्र कई अन्य अपरंपरागत मछली स्रोतों के लिए जाना जाता है, जिन पर पकड की संभावना अधिक है। इनमें सी-वीडस (समुद्री शैवाल), पर्ल ओयस्टर (मुक्ता शुक्ति), क्लाम्स (सीपी), गैस्ट्रोपोइस (जठरपाद) तथा ओर्नामेंटल (आलंकारिक) मछलियाँ सम्मिलित है। सौराष्ट्र के समुद्रतल कई संकरहीन जातियों के घर है जैसे कि डोलफिन, ड्यूगोन्स, कछुए, व्हेल शार्क्स, मार्लिन्स, गोर्गोनिडस तथा कोरल्स। ●

स्कोम्ब्रोइड मात्स्यिकी का प्रबंधन

आइ एस बी एन : 81-901219 - I-X

(संपादक : एन.जी.के. पिल्लै, एन.जी. मेनोन, पी.पी. पिल्लै और यू. गंगा)

सी एम एफ आर आइ द्वारा कोचीन में सितंबर, 2000 को आयोजित स्क्रोम्ब्रोइड पर राष्ट्रीय कार्यशाला पर संपादित पुस्तक में स्कोम्ब्रोइड के क्षेत्र में देश के श्रेष्ठ विशेषज्ञों के योगदान सम्मिलित किए गए हैं। इस प्रकाशन में स्कोम्ब्रोइडों का पकड स्थान में पहचान, भारतीय महासमुद्र में इस मात्स्यिकी का स्तर और इस के अलावा स्कोम्ब्रोइड स्टॉक का विदोहन, स्टॉक निर्धारण, संग्रहण, संग्रहणोत्तर प्रौद्योगिकी, विपणन और स्कोम्ब्रोइडों की विवरणी भी सम्मिलित किए गए हैं। इस पुस्तक में समाकलित जानकारी हमारे प्रग्रहण मात्स्यिकी उप क्षेत्र को आवश्यक सूचनाएं और आंकडाओं का विवरण प्रदान करने में सहायक है और निस्संदेह बता सकता है कि यह छात्रों, अनुसंधान कर्ताओं, नीति आयोजकों, उद्यमियों और उद्योगपतियों के लिए संदर्भ ग्रंथ के रूप में बहुत उपयोगी है।

यह प्रकाशन डेमी 1/8 आकार, 280 पृष्ठों, हर्डबैक केस बैंडिंग का है जिसका मूल्य देश में 300/- रु. और विदेश में 100 डोलर है ।

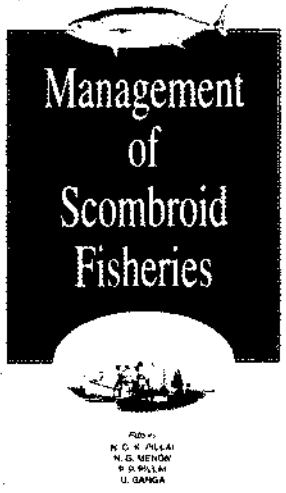

महाराष्ट्र की गोल्डन ऐंचोवी मात्स्यिकी

मोहम्मद ज़ाफर खान

केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, मुंबई अनुसंधान केंद्र, महाराष्ट्र

गोल्डन ऐंचोवी *कोइलिया डसुमेरी* भारत के उत्तर पश्चिम तट में पाई जाने वाली एक विशेष क्षेत्रीय संपदा है। यह हारपोडोन नेहरियस और नोन-पेनिआइड झींगों के साथ पाई जाने वाली एक प्रमुख बेलापवर्ती संपदा है। वर्षों पहले 'डोल' जाल द्वारा एच. नेहरियस की पकड के साथ उप पकड के रूप में इसे पकडा जाता था। नाद में आनायकों द्वारा इसकी बराबर पकड रिपोर्ट की गई (खान, 2000) पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा में सी. रामकारटी के साथ इस जाति की अलग मात्स्यिकी मिलने लगी है आर्थिक प्रधानता होते भी इस संपदा पर ज़्यादा अध्ययन नहीं हुआ था। इसके जीव विज्ञान पर पालेकर और करांडिकर (1953), बाल और जोशी (1956), गाडगिल (1965) और फेर्नान्डेज़ तथा देवराज (1996) द्वारा ज़्यादतर योगदान हुआ है।

मात्स्यिकी

महाराष्ट्र : महाराष्ट्र में पिछले 10 वर्षों के दौरान पकड में परिवर्तन हुआ जो 7,921 (1992) और 19,591 (1998) थी और औसत पकड 9,949 टन (चित्र-1) थी। यह जाति एच. नेहरियस और नोन-पेनिआइड झींगों के साथ रहने की वजह से सी. डसुमेरी की पकड की घटती एच. नेहरियस पर भी प्रभाव डालती है। गिअरवार आंकडा यह सूचित करता है कि वर्ष 1980 से पहले डोल जाल द्वारा इस संपदा की समग्र पकड की जाती है लेकिन वर्ष 1985 में डोल जालों के स्थान पर ट्रालरों के आगमन से पकड में वृद्धि हुई। वर्ष 1986-90 के दौरान ट्राल और डोल जाल द्वारा क्रमशः 38% और 60% योगदान हुआ, 1996-2000 के दौरान ट्रालरों का योगदान 70% तक बढ़ गया (चित्र - 2) पिछले 15 वर्षों के आंकडों का एच. नेहरियस और नोन पेनिआइड झींगों के साथ विश्लेषण करने पर बम्बिलों और सी. डसुमेरी की पकड में हुई घटती समान देखी गई। लेकिन उसी अवधि के दौरान नोन-पेनिआइड झींगों की पकड बढ़ गई है।

कोइलिया डसुमेरी

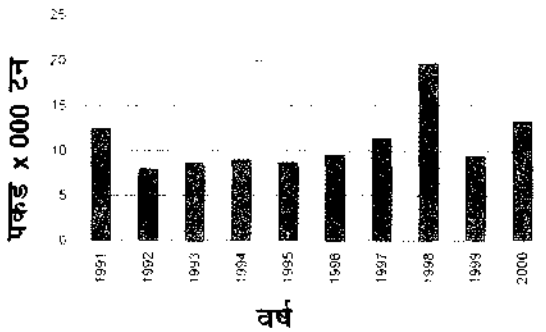

सी. डसुमेरी की वार्षिक पकड (महाराष्ट्र)

वार्षिक पकड x000 टन

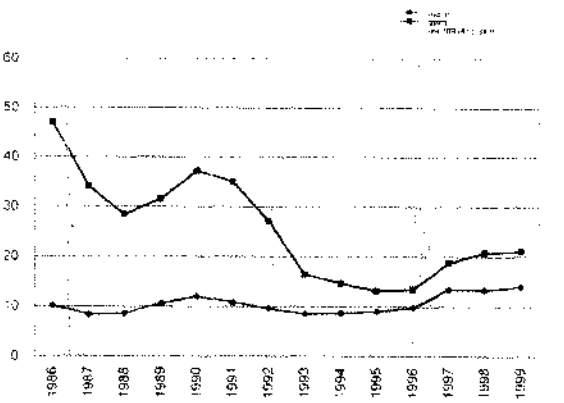

***एच. नेहरियस* और *नोन पेनिआइड* झींगों के साथ *सी. डसुमेरी* की वार्षिक पकड (महाराष्ट्र)**

माहिक पकड दर प्रचुरता का श्रृंग काल नहीं सूचित करती है लेकिन पहले में श्रृंगकाल जनवरी-अप्रैल के दौरान

देखी गई है। वर्ष 2000-2001 के दौरान न्यूफेरी वार्फ में ट्रालर द्वारा 4.56% सी. डसुमेरी की पकड हुई लेकिन वर्ष 1990-91 के दौरान पकड का प्रतिशत 1.4% था जो डोल जालों के क्षेत्र में ट्रालरों का अतिक्रमण सूचित करता है।

खाद्य एवं अशन (Food and Feeding)

खाद्य एवं अशन के स्वभाव पर अध्ययन करने पर यह व्यक्त हो गया कि यह जाति मुख्यतः असेटस जाति के किशोरों, कोपिपोड्स, ओस्ट्रकोड्स, ऐम्फीपोड, छोटी मछलियों तथा डिंभकों को खाती है, ऐंचोवी के उदर में 14.7% कोपीपोड जो प्राणिप्लवकों का 97% होता है और 8.8% ओस्ट्रकोड्स जो प्राणिप्लवकों का केवल 8% होता है, पाए गए। इसी तरह प्राणिप्लवकों में विरल रूप से प्रचुर होने वाले असेटस जाति और मछली डिंभक भी क्रमशः 23.7% तथा 3.5% दिखाए पडे। अतः ओस्ट्रकोड्स, असेटस जाति और मछली डिंभक सी. डसुमेरी के पसंद खाद्य माने जाते हैं।

परिपक्वता और अंडजनन

स्त्री जातियों की अपेक्षा पुरुष जाति प्रमुख है और वर्ष 1999 और 2000 में लिंग अनुपात क्रमशः 1:06 और 1:08 है। कई महीनों में लिंग अनुपात में अनुपातहीनता दिखाई पडी लेकिन उनकी आवर्तिता हर वर्ष बदलती रही। प्रथम परिपक्वता में स्त्री जातियों का आकार 162.5 मि मी था।

जननग्रंथि की माहिक स्थिति इसकी विश्रम अवस्था तथा विकास सूचित करती है और इससे यह भी व्यक्त हो जाती है कि अंडजनन वर्तमान मत्स्यन मेखला के बाहर संपन्न हो जाता है। पहले किए गए अध्ययनों द्वारा यह साबित हुआ है कि पूरे वर्ष में परिपक्व नमूने पाए जाते थे। अंडाणु व्यास पर किए गए अध्ययन भी यह व्यक्त करते हैं कि मछली वर्ष में एक बार अंडजनन करती है।

आयु व बढ़ती, मृत्युता और संभरण आकार

आयु व बढ़ती पर किए गए अध्ययनों द्वारा व्यक्त हो गया कि यह जाति 217 मि मी ± 9.2 की अधिकतम लंबाई तक बढ़ जाती है और बढ़ती गुणांक 1.19 (वार्षिक) ± 0.144 है। इस जाति का, केवल दो वर्षों का छोटा जीवन काल है। पहले और दूसरे वर्ष में इस की बढ़ती क्रमशः 151.6 मि मी और 196.9 मि मी है और इसका जीवन काल <2 वर्ष है।

पिछले पांच वर्षों का मृत्युता गुणांक (2) 3.67 (1996) और 6.0 (2000) के बीच बदलता रहा और पॉली तरीका द्वारा 2.12 की मृत्युता आकलित की गई। वर्तमान विदोहन दर (F/z) 0.63 है।

महाराष्ट्र में अधिकतम वहनीय पकड (MSY) 14,670 टन आकलित किया गया और पिछले दो वर्षों के दौरान औसत प्राप्तित 11,241 टन आकलित किया गया।

महाराष्ट्र में पहले *सी. डसुमेरी* मुख्य तौर पर डाल जालों की एक उप पकड थी फिर ट्रालरों के आविर्भाव से कुल पकड का 70% पकड होने लगी। इनकी पकड की घटती बंबिलों की पकड की घटती पर निर्भर है। बम्बिल मात्स्यिकी सितंबर से मई तक मिलती है और पकड दर सितंबर-जनवरी में अधिकतम है। नब्बे के वर्षों में बंबिलों की मात्स्यिकी में हुई भारी घटती के फलस्वरूप *सी डसुमेरी* की पकड में भी उल्लेखनीय घटती हुई। इस के साथ साथ फरवरी-मई, जो *सी. डसुमेरी* की प्रचुरता का श्रृंगकाल होने पर भी इसके दौरान बंबिलों की पकड की घटती की वजह से बहुत मत्स्यन नहीं करने सो डसुमरी पकड में घटती हुई।

वास्तव में, न्यू फेरी वार्फ में 40 मी गहराई मेखला में ट्रालरों का ज़्यादतर मत्स्यन करने से इसका बुरा असर ज़मानों से इसी मेखला में डोल जालों उपयुक्त करके मत्स्यन करने वाले परंपरागत मछुआरों पर पड जाता है और यह इन दोनों के बीच संघर्ष का कारण भी बन जाता है। ट्रालरों द्वारा परंपरागत बोटों के स्टेक (खंभ) खराब होने

के मामले भी हुए हैं। केवल महाराष्ट्र में एक लाख से अधिक मछुआरे रोज़ी-रोटी के लिए डोल नेट उपयुक्त करके मत्स्यन करते हैं; अतः इस क्षेत्र में ट्रालरों का आनायन प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।

दक्षिण गुजरात के मछुआरों के अनुरोध पर उनके समुद्र में ट्रालरों का आनायन रोकने का एक प्रस्ताव महाराष्ट्र सरकार के पास पहले ही है। इसके बावजूद संघर्ष कम करने के लिए वर्ष 1985 में गुजराती मछुआरों के लिए न्यूफेरी वार्फ जेटी का निर्माण किया गया।

एच. नेहरियस तथा *सी. डसुमेरी* की पकड में हुई घटती और डोल जाल द्वारा पकडने वाली मछली जातियों के ट्रालरों द्वारा होने वाले अतिमत्स्यन से संघर्ष सी स्थिति गंभीर होने लगी।

अतः डोल नेट तथा ट्रालरों के मालिक विभिन्न राज्यों से होने के नाने उनके बीच का संघर्ष दूर करना अनिवार्य है।

सी. डसुमेरी के प्रबंधन की नीति अलग से सुझाया नहीं जा सकता; क्योंकि ये डोल नेट मत्स्यन के साथ मिलने वाली जाति है और इसके अतिरिक्त ये चारा मछली भी है जो इस क्षेत्र के कई प्रमुख मछली जातियों का खाद्य है।

ऐंचोवी की गिअरवार पकड़

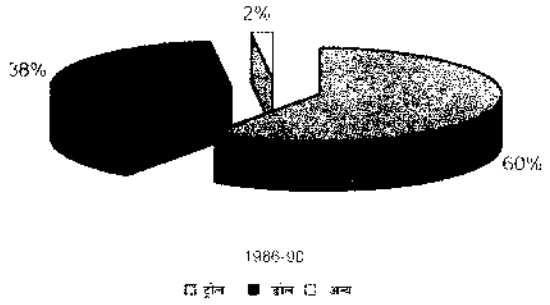

सी. डसुमेरी की गिअरवार पकड (महाराष्ट्र)

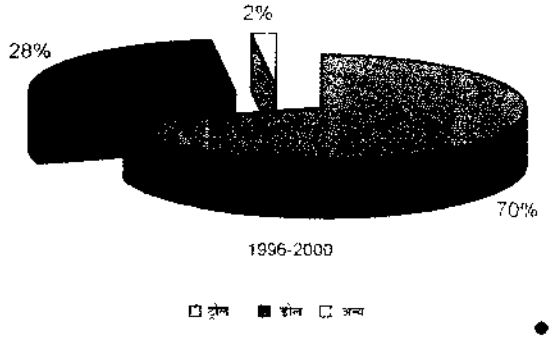

कछुवा-मानव सह अस्तित्व सदियों से

कछुए कई प्रकार के होते है कुछ कछुए खारे पानी में रहते है कुछ मीठे पानी में और कुछ ज़मीन पर। अनेक कछुए ऐसे है जो कुछ इंचो से अधिक लंबे नही होते इसके विपरीत कुछ कछुए एक गज से भी लंबे और करीब 450 कि ग्राम वजनवाले भी होते है। जमीन पर रहनेवाला एक बडा कछुआ बडे आराम से 100 से अधिक वर्ष जीता है।

भारत में कछुआ एक पवित्र प्राणी है उसे सृजन और पालन के देवता विष्णु के दशावतारो में से एक माना जाता है। शतपथ ब्राहमण में कहा गया है सृजन के देवता ने कच्छप का रूप धारण कर अपनी संतान पैदा की उसी से समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। भारत में तटवर्ती गाँवो के लोग कच्छप को पूजनीय मानते है। परंपरागत मछुआरे भी इसलिए अहिंसक तकनीकों का इस्तेमाल करते है, ताकि कछुओं जैसे सागर प्रजातियों को चोट न पहूँचे या उनका वध न हो, इसी वजह से सदियों से भारत के तटों पर मानव और कछुओं का सह अस्तित्व कायम है।

-नवभारत टाइम्स से साभार

रीफ जंगल का शेर : भारतीय लायन फिश

राहुल कृष्ण पान्डेय, के.पी. सैयद कोया
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, मिनीकोय अनुसंधान केन्द्र, लक्षद्वीप

भारतीय लायन फिश या सिल्वर टर्की फिश, टेरिस वोलीटन्स जो कि अत्यन्त सुन्दर परन्तु प्रवाल मछलियों में सबसे खतरनाक मछली है। इसके पख देखने में पक्षी के पर के समान है, नुकीली सूई के समान होते है। इसके पख जबकि खतरनाक होने के साथ-साथ आकर्षक होते है और वास्तव में शक्तिशाली विष पैदा करते है। एक लायन फिश प्रायः अपने पखों का प्रयोग दूसरी मछली पर आक्रमण करने के लिये करती है। यहाँ तक कि यह विषैला पख इतना खतरनाक है कि यदि पनडुब्बे दुर्भाग्यवश परवाह किये बिना इसके काफी पास आ जाते तो कभी मृत्यु तक के खतरे का सामना करना पड़ सकता है। वास्तव में विष इसका हथियार होता है जिसका प्रयोग यह दो रूपों में करती है, अर्थात अपनी रक्षा तथा दूसरों पर आक्रमण करने के लिये लायन फिश लाल रंजित या धूसर कत्थई रंग की होती है। इसके शरीर पर बहुत सी पतली गाढ़ी धारियाँ होती है। सिर बड़ा व नुकीला और पृष्ठीय पख कंटक, श्यामल वलय-आकार निशान लिये होते है। यह उपतटीय जल में, चट्टानी तलों पर, प्रवालो के चारों तरफ और जेट्टी के खम्भों के पास 60 मीटर गहराई तक पायी जाती है। इसका वितरण अफ्रीका के सम्पूर्ण पूर्वी समुद्री भाग, गल्फ़ की खाड़ी, लक्षद्वीप, मालद्वीप, मलेशिया, इन्डोनेशिया, फिलीपीन्स, जापान, चीन तथा आस्ट्रेलिया में है। भारतीय लायन फिश स्कोरपेनिडे कुटुम्ब के अन्तर्गत आती है। इस कुटुम्ब में कुल 375 जातियाँ है जिनमें से 82 पश्चिमी भारतीय समुद्री क्षेत्र में पायी जाती है। ये अत्यन्त व्यावसायिक उपयोगिता नहीं रखती है। परन्तु कुछ मछलियाँ जैसे भारतीय लायन फिश सजावटी मछलियों की तरह अत्यन्त सुन्दर व कीमती होते हुये अपनी विशेष उपयोगिता व स्थान रखती है। स्कोरपियन मछलीयों में धारदार विषैला कंटक पाये जाते हैं जो कि भारतीय लायन फिश के मामले में ये बहुत सुदृढ है। भारतीय लायन फिश में अपने रंग को परिवर्तित करने की क्षमता होती है जो कि इसकी वृद्धि, मौसम में परिवर्तन और कभी-कभी इसके आवास परिवर्तन के कारण होता है। ऐसा जाना गया है कि इसके शरीर पर पाये जाने वाली पट्टियाँ

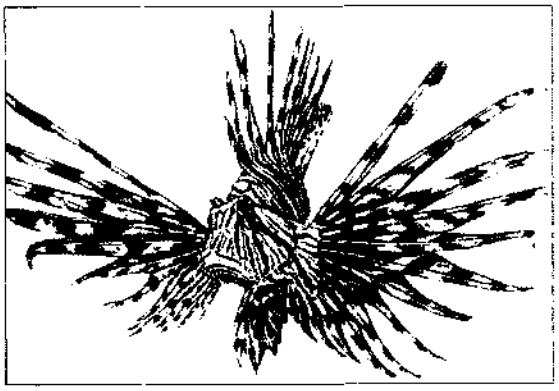

भारतीय लायन फिश

और बिन्दु आक्रमणकारी को भ्रमित व सावधान करने में अपना योगदान दे सकती है जिस से कि ये किसी शिकारी को शिकार होने से बचने के लिये अतिशीघ्र प्रवालों में मिलने में सहायता करती है। यह जानना भी अति आवश्यक है कि भारतीय लायन फिश जब अपने 'पखों' को किसी खतरे के संकेत के रूप में फैलाती है तब इसका यह किसी शारीरिक या मानसिक विक्षोभ का प्रदर्श होता है जो कि दूसरी मछलियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ता है। इस कथन का आशय यह है कि मछली के रंग, निशान और अन्य लक्षण इसकी ही जाति और दूसरी जाति की मछलियों के लिये विशेष संकेत होते है। ये संकेत एक मछली द्वारा दूसरी

मछली के प्रणय निमंत्रण का द्योतक है दूसरे शब्दों में यह आनंन्दोत्सव की इच्छा जाहिर करती है। इसके साथ-साथ ये संकेत यह भी प्रदर्शित व सूचित करते है कि यह उनका अधिकार क्षेत्र है या वह विशेष क्षेत्र पहले से ही उनके द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया है। साधारणतयः लायन फिश रीफ क्षेत्रों में जोड़े में तैरती हुई मिलती है। लक्षद्वीप में इसका प्रयोग केवल सजावटी मछली के रूप में पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये होता है। इस बात को ध्यान में रखना अति-आवश्यक है कि यह यहाँ पर बहुतायत में नहीं पाई जाती है। यह अत्यन्त दुर्लभ मछली है। इसलिये पर्यावरणीय संपदा प्रबन्धन के दृष्टिकोण से यह नितान्त आवश्यक है कि रीफ क्षेत्रों को संतुलित रखा जाये, लैगून का तलमार्जन करने से बचा जाये और प्रवालों के पायन पर रोध लगायी जाये। ●

समुद्र तट के ये तीर्थ स्थान

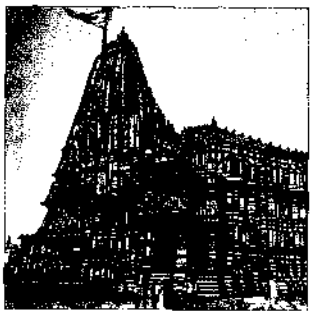

सोमनाथः सोमनाथ भारत का प्रसिद्ध और प्राचीन मंदिर है। यह समुद्र तट पर बना है। गुजरात राज्य के कठियावाड क्षेत्र के वेरावल स्टेशन से सोमनाथ मंदिर साढे चार किलोमीटर दूर है। इस मंदिर के बारे में प्रसिद्ध है कि इस मंदिर में सोना, हीरे जवाहरत का बडा भंडार था। इस में नीलम के 56 खंभे थे।

इतिहास से पता चलता है कि सोमनाथ का प्राचीन मंदिर ईसा पूर्व छठवीं सदी में ही निर्मित था। इसके बाद के वर्षों में देशी और विदेशी राजाओं ने इसे तोडा, लूटा और पुनर्निर्माण भी किया। स्वतंत्रा प्राप्ति के बाद भारत के पहले गृह मंत्री वल्लभ भाई पटेलजी की कोशिशों से आज के मंदिर का निर्माण पूरा हुआ। अपने नए रूप में सोमनाथ का मंदिर अपनी उसी पुरानी गरिमा के साथ मस्तक उठाए खडा है।

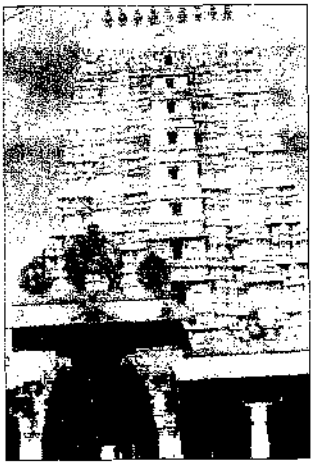

रामेश्वरमः तमिलनाडु के रामनाथपुरम जिले में स्थित रामेश्वरम भारत के चार पवित्र धामों में से एक है। यहाँ के ज्योतिर्लिंग को स्वयं भगवान् राम ने स्थापित किया था।

सीता-हरण के बाद राम सुग्रीव की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई करने गए थे। लेकिन लंका तक पहुँचने के लिए समुद्र पार करना जरूरी था। तब राम ने सेना सहित रामेश्वरम में ही पड़ाव डाला था। उन्होंने समुद्र से लंका तक जाने के लिए रास्ता माँगा। मगर समुद्र ने रास्ता नहीं दिया।

इस पर राम को गुस्सा आ गया। उन्होंने समुद्र को सुखाने के लिए धनुष-बाण उठा लिया। यह देखकर समुद्र ब्राह्मण का वेश धारण करके राम के सामने आ गया। उसने राम को समझाया कि पानी को सुखाने से बेहतर है कि लंका तक एक पुल बना दिया जाना।

राम ने समुद्र की बात मान ली पुल का निर्माण किया और युद्ध में रावण को मारकर सीता के साथ राम फिर इसी स्थान पर आए। ऋषियों का कहना था कि राम के द्वारा भगवान् शंकर का एक ज्योतिर्लिंग स्थापित करने से ब्रह्महत्या का पाप समाप्त हो सकता है। राम ने ज्योतिर्लिंग लाने के लिए हनुमान को कैलास पर्वत पर भेजा।

हनुमान को लौटने में कुछ देर हो गई। तब तक ज्योतिर्लिंग की स्थापना का मुहूर्त और रावण को मारने के प्रायश्चित के रूप में यहाँ एक ज्योतिर्लिंग की स्थापना की, जो 'रामेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण

डॉ. वीरेन्द्र वीर सिंह
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, मुंबई अनुसंधान केन्द्र, महाराष्ट्र

संपूर्ण विश्व के विकास हेतु की जा रही आधुनिक गतिविधियों तथा विश्व के तमाम हिस्सों में निरंतर बढ़ती हुई आबादी के कारण आज प्राकृतिक संसाधनों पर एक न एक रुक पाने वाला दबाव महसूस किया जा रहा है। भूमि, जल, लकड़ी, जीवजंतु मछलियाँ इत्यादि जैसे संसाधनों की माँग आज जिस प्रकार बढ़ रही है उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये संसाधन आगे आने वाली पीढ़ियों को शायद ही उपलब्ध रह पाएँगे। वर्तमान परिदृश्य में सभी जातियों, वंर्गों एवं उनके प्राकृतिक वास तथा परितंत्र के उचित प्रबंधन की आवश्यकता है जिससे कि इनका उपयोग समझदारी पूर्वक किया जा सके।

आज की परिस्थिति में यह अत्यावश्यक हो गया है कि संसाधनों का दोहन इस प्रकार किया ज़ाए कि वे अपनी नवीनीकरण की क्षमता को जाग्रत रख सकें। संरक्षण पर आधारित प्रबंधन को सर्वोत्तम माना जाता है क्योंकि इसके द्वारा न केवल जैविक उत्पादकता क़ायम रहती है अपितु पुनः नवीनीकृत हो सकने वाले संसाधनों की दीर्घकालीन अन्तःशक्ति में भी वृद्धि होती है। अँग्रेज़ी भाषा में प्रयुक्त 'संरक्षण' शब्द का अधिकतम शासकीय प्रयोग इस शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रपति थियोडोर रुजवेल्ट के प्रशासन ने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बहुतायत में करके इसे प्रचलित बना दिया तथा यह शब्द 'प्राकृतिक संसाधनों के समझदारी पूर्वक उपयोग' के लिए नियमित बोल-चाल में आ गया। इस शब्द का अन्य अर्थ 'संसाधनों की धारणीयता हेतु दोहन पर नियंत्रण' भी माना गया। इस पारंपरिक शब्द को आज 'धारणीय - वहनीय उपायों' के समकक्ष माना जाता है।

आधुनिक भाषा में 'धारणीय' शब्द का प्रयोग बृहद

औद्योगिक, घरेलु स्रोतों एवम् नगरपालिकाओं द्वारा मलजल का प्रवाह

परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। प्रबंधन के दृष्टिकोण से संसाधनों की धारणीयता बनाए रखने के लिए उनका पुनः नवीनीकृत हो सकने वाला भाग ही उपयोग में लिए जाने के लिए दोहित किया जाता है। हम सब यह जानते है कि आज विकास एवं प्रबंधन हेतु कुछ उपकरणों या तरीक़ों का प्रयोग करना आवश्यक हो गया है और इन्हें हम प्रबंधन के "औज़ार " कहते हैं परंतु यह "स्क्रू ड्राइवर" या हथौड़ी जैसे पारंपरिक औज़ारों से पूर्णतः भिन्न, सुनियोजित एवं योजनाबद्ध तरीक़े होते हैं। धारणीय विकास हेतु पर्यावरण विद् तथा समाजविद् दो अत्यंत सशक्त तरीक़ों का प्रयोग करते है जिन्हें क्रमशः 'पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण' एवं 'सामाजिक प्रभाव निर्धारण' कहा जाता है।

हमें आज यह भलीभाँति ज्ञात हो चुका है कि किसी भी विकास रत कार्यक्रम को धारणीयता की कसौटी पर पूर्णतःखरा उतारने के लिए वैज्ञानिकों तथा समाज शास्त्रियों को मिल कर काम करना आवश्यक है। आज नियोजकों

एवं सरकार की सहायता के लिए क्रमबद्ध तरीक़े जिनसे पर्यावरणीय प्रक्रियाओं एवं उनके उपलक्ष्यों को समझा जा सके पूर्णतः विकसित हो चुके हैं। आज के युग में इन तरीक़ों को हम काली घटा के बीच एक रुपहली रेखा के रुप में पाते हैं और आशा करते है कि इनके माध्यम से हम अबाधित विकास के दुष्परिणामों को कम करने मैं सफल होंगे।

आज यह सर्वविदित है कि प्रकृति में होने वाली पर्यावरणीय प्रक्रियाएँ अत्यंत उलझावपूर्ण होती हैं। इन प्रक्रियाओं से जनित समस्याएँ भी सदैव एक दूसरे से संबद्ध एवं संबंधित रहते हुए जटिल हो जाती हैं। ये समस्याएँ राजनीतिक सीमाओं से नियंत्रित नहीं होती हैं तथा इनका प्रभाव सर्वव्यापी होता है। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि समुद्रीय पर्यावरण की समस्याएं अत्याधिक पेचीदा होती है क्यों कि समुद्री पारिस्थितिकी पर अन्य महासागरों, विशेष तटीय प्रक्षेत्रों एवं उनसे संबद्ध मृदुजल तंत्रों का परोक्ष प्रभाव पड़ता है। इस आलेख में हम समुद्री परिस्थितिकी के संदर्भ में पर्यावरणीय प्रभाग निर्धारण की चर्चा करेंगे।

विश्व की संपूर्ण आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा संसाधनों की विपुलता के कारण समुद्र तटीय क्षेत्रों में निवास करता है तथा समुद्री व तटीय संसाधनों को दोहन करके लाभ प्राप्त करता है। तटीय प्रक्षेत्रों में रोज़गार के अवसर भी अधिक सुलभ रहते है क्योंकि सामुद्रिक गतिविधियों के अतिरिक्त पर्यटन तथा मनोरंजनात्मक अवसरों की यहाँ भरमार रहती है। परंतु एक बात जो विशेष ध्यान देते योग्य है वह यह कि इन क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रक्रियाएँ तथा परिस्थितिक तंत्र न केवल सामाजिक व आर्थिक ढाँचे को प्रभावित करते है अपितु सामाजिक व आर्थिक कारणों से की जाने वाली अनियंत्रित गतिविधियों के दुष्प्रभाव को भी दीर्घावधि तक स्वयं से समाहित करते रहते है।

समुद्र, तटवर्ती प्रक्षेत्रों और इनमें उपलब्ध संसाधनों के धारणीय उपयोग में सबसे महत्वपूर्ण रुकावटें - बढ़ती हुई आबादी का दबाव, उपलब्ध जगहों एवं संसाधनों की बढ़ती हुई माँग तथा उनके उपयोग के तरीक़े, विश्व के बड़े भूभाग में फैली ग़रीबी व कंगाली इत्यादि है।

तटवर्ती निर्माण कार्य

आगोल स्तर पर समुद्री एवं तटवर्ती क्षेत्रों की समस्याएँ एवं उनके कारणों में विगत कई दशकों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दृष्टिगोचर हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समुद्री प्रदूषण की कुछ समस्याओं से मुक्ति पाने में व किन्हीं विशेष तटीय प्रक्षेत्रों की अवस्था में गुणात्मक सुधार लाने में किए गए प्रयासों का कुछ उल्लेखनीय असर हुआ है और मुंबई जैसे कुछ चुनिंदा स्थानों पर यह अधिक तीव्रता से अपना प्रभाव लगातार बढ़ाता जा रहा है।

पृष्ठ प्रदेशों की भूमि से उत्पन्न प्रदूषण समुद्री पर्यावरण के लिए सदैव चिंता का विषय रहा है परंतु तटीय एवं समुद्री पर्यावरण की विहंगमता को ध्यान में रखकर यहाँ हो सकने वाले नुकसान और चुनौतियों का लेखाजोखा एक अधिक सन्तुलित अनुदृश्य प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। आज जलवायु संबंधित दूरगामी वैश्विक प्रभावों के अतिरिक्त समुद्री तथा तटवर्ती क्षेत्रों की गुणवत्ता एवं उपयोग को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रभावित करने वाली भू - आधारित प्रमुख गतिविधियाँ निम्न प्रकार से है:

- प्राकृतिक वास एवम् पारिस्थितिक तंत्र का परिवर्तन एवम् विनाश।

- मानवीय स्वास्थ पर मलजल का प्रभाव।
- बडे पैमाने पर तीव्रता से अनुभव की जानेवाली हानिकारक पोषकों की अधिकता।
- मात्स्यिकी एवम् अन्य प्रमुख पुनरुज्जीवित हो सकने वाले मुख्य संसाधनों के स्रोत में गिरावट।
- जलीय प्रवाह में परिवर्तन से उत्पन्न तलछट के बहाव में परिवर्तन

उक्त वर्णित विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रख कर यह अब नितान्त आवश्यक समझा जाने लगा है कि तटीय एवम् समुद्री क्षेत्रों को नियमित रूप से 'पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण' की प्रक्रिया के द्वारा आकलित किया जाए। व्यापक रूप से किये गये ये अध्ययन समान रूप से प्रबन्धकों, वैज्ञानिकों, नियोजकों एवम् नीति निर्धारकों के लिये उपयोगी रहते हैं। इनकी उपयोगिता के प्रमुख कारण निम्नप्रकार से हैः

- इन अध्ययनों के माध्यम से हमें समकालीन पर्यावरण की स्थिति, प्रवृत्ति एवम् गुणवत्ता के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त होती है वो प्रबन्धन हेतु अवश्यक रहती है।
- यह अध्ययन हमें वैज्ञानिक ज्ञान में मौजूद महत्वपूर्ण रिक्तियों का बोध कराते हैं जिससे कि आगे किये जाने वाले अन्वेषणों की दिशा एवम् प्राथमिकतायें निर्धारित करने हेतु प्रामाणित आधार प्राप्त होता है।
- इन अध्ययनों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण हेतु किये जा रहे उपायों की कारगरता एवम् पर्याप्तता के सम्बन्ध में निर्णयात्मक जानकारी प्राप्त होती है जो कि इस सम्बन्ध में आवश्यक समायोजन हेतु मार्ग दर्शक रहती है।

पर्यावरणीय प्रभाव को निर्धारित करने के लिये किये गये किसी भी अध्ययन द्वारा हमें इस सम्बन्ध में उपलब्ध समस्त जानकारी का सार प्राप्त हो जाता है जिससे हम सम्बन्धित पर्यावरण खण्ड की विशेषता को ध्यान में रख कर निश्चित राय बना पाते है। इस प्रक्रिया द्वारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी प्राकृतिक लक्षणों में आये परिवर्तनों तथा उनके दूरगामी परिणामों के सम्बन्ध में रहती हैं। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि समुद्री

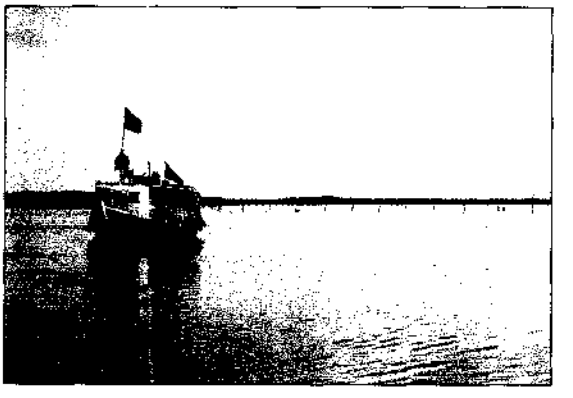

टूरिसम (पर्यटन) तथा मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ

पर्यावरण के स्वरूप का निर्धारण एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। सिध्दान्ततः समुद्री पर्यावरण के किसी भी घटक के बारे में मानदण्डो का विकास किया जा सकता है और सभी भौतिक, रासायनिक एवम् जैविक घटकों के लिये कसौटियाँ बनायी जा सकती हैं । इसके अतिरिक्त किसी भी विशेष क्षेत्र, कालावधि एवम् उपयोगों के अनुरूप भी मानकों का विकास किया जा सकता है।

पर्यावरणीय मानक या तो गुणात्मक - विवरणात्मक हो सकते है अथवा परिमाणात्मक। इसके अतिरिक्त दोनों प्रकारों को मिलाकर भी मानक निर्धारित किये जा सकते है। परिमाणात्मक मानकों को तुलनात्मक एवम् वैज्ञानिक पैमाने के अनुरूप ज्यादा सुविधाजनक ढंग से आवश्यकतानुसार ढाला जा सकता है। उदाहरण के तौर पर केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय, पर्यावरण में पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों की सांद्रता की सीमायें निर्धारित करता है अतः इन सीमाओं का अनुपालन कराना एकदम सीधा-साधा कार्य है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पर्यावरण में विद्यमान जैविक रूपकों-जैसे-संरक्षण हेतु किसी विशेष परिस्थितिकी का

अनुपात निर्धारित, विशेष जाति अथवा प्रजाति का सम्पोषण, विशेष क्रियात्मक स्थिति को दर्शाने वाली खास प्रजातियों के सूचक इत्यादि मानकों का विकास एक अत्यावश्यक प्रक्रिया है।

समुद्री पर्यावरण की गुणवत्ता को दर्शाने वाला सर्वसामान्य मानक यह है कि किसी भी स्तर पर परिस्थिति में कोई परिवर्तन नही होना चाहिये, विशेष रूप से पर्यावरण का अपकर्ष दर्शाने वाले मानकों की मात्रा में बढ़ोतरी तो बिलकुल ही नहीं होनी चाहिये। रासायनिक सान्द्रता में वृध्दि, प्राणवायु की मात्रा में कमी तथा विषाक्त तत्वों को बढ़ाने वाली शैवाल का अचानक बढ़ना आदि परिस्थितियाँ अवांछनीय मानी जाती हैं और इनके बारे में पर्याप्त वैज्ञानिक जानकारी रखना अत्यावश्यक हो जाता है जिससे कि उपयुक्त

संदर्भात्मक मानक परिभाषित किये जा सकें। इन संदर्भात्मक मापदंडों को निश्चित करते समय प्राकृतिक परिवर्तनशीलता का ध्यान रखा जाता है।

समुद्री क्षेत्रों हेतु गुणवत्ता दर्शक मानकों का निर्धारण एक अत्यंन्त महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इनके द्वारा ही हम उन मानवीय गतिविधियों का प्रबन्धन कर सकते है जिनके द्वारा क्षेत्र विशेष की उत्पादकता एवम् परिस्थितिकी प्रभावित होती है। सटीक तरीके से वर्णित मानक चाहे वो विवरणात्मक हो अथवा संख्यात्मक उचित प्रबन्धन हेतु मूलभूत आवश्यकता माने जाते हैं जिनके द्वारा किसी विशेष लक्ष्य को ध्यान में रख कर पर्यावरणीय आकडों का संग्रह करने में सहायता मिलती है। विशिष्ट लक्ष्यों का निर्धारण भी अत्यावश्यक माना जाता है क्योंकि प्रासंगिक तथा व्याख्येय आँकडों के आधार पर ही वैज्ञानिक अध्ययन की रूपरेखा बनायी जा सकती है। बहुधा पर्यावरणीय कानून भी मानको की व्याख्या तथा सीमांकन प्रदान करते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण के लिये भौगोलिक विशेषताओं व सीमाओं के साथ-साथ पर्यावरणीय वैशिष्य, पारिस्थितिकी एवम् मानवीय गतिविधियों की जानकारी बहुत महत्वपूर्ण होती है। इन सभी की व्याख्या, प्रक्रिया प्रारम्भ करने के समय ही की जाती है। इसके पश्चात निर्धारण क्षेत्र में होने वाली और सामुद्रिक पर्यावरण को बदल सकने में सक्षम हानिकारक गतिविधियों का आकलन किया जाता है। उन गतिविधियों का विशेष ध्यान रखा जाता है जिनके द्वारा नुकसान की सम्भावना सर्वाधिक होती है।

समुद्री क्षेत्रों में पायी जाने वाली उक्त गतिविधियों में

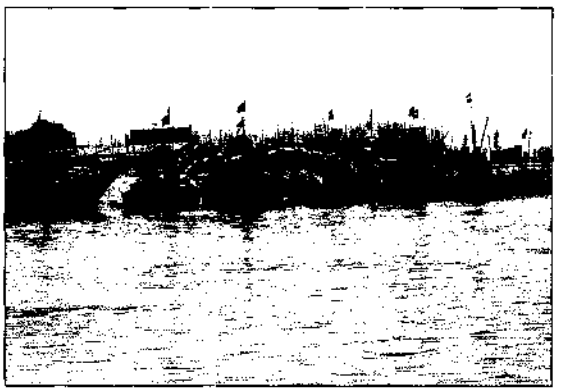

मात्स्यिकी

प्रमुख हैं - बन्दरगाहों का विकास, नौवहन हेतु तलकर्षण, औद्योगिक घरेलु स्रोतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा मलजल का प्रवाह, तटवर्ती निर्माण कार्य, टूरिजम-पर्यटन तथा मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ, नौवहन, वानिकी, मात्स्यिकी जलकृषि विभिन्न कृषि रसायनों का उपयोग करके की जानेवाली कृषि, खनिज दोहन एवं उर्जा उत्पादन।

मौसम तथा जलीय चक्रों से सम्बन्धित सूचनाओं का भी इन निर्धारक अध्ययनों में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। भौगोलिक सीमाओं के परे जलीय प्रवाहों, जलीय तंत्र में समाहित कणों का प्रवाह एवं नियति, विशिष्ट मानवजनित गतिविधियाँ जो जलीय प्रवाहों को इस प्रकार परिवर्तित कर सकें कि जलकणों तक का प्रवाह बदल जाये आदि मुख्यतः विस्तार से निरीक्षित की जाती है।

प्राकृतिक रूप में उपलब्ध तत्वों की सांद्रता तथा वितरण का भी अध्ययन विस्तार से किया जाता है क्योंकि ये तत्व सामुद्रिक जीव जन्तुओं तथा पौधों के विकास, संघटन तथा धारणीयता को प्रभावित करते हैं। समुद्री पानी

में धुली प्राणवायु तथा नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं सिलिका इत्यादि का प्राकृतिक एवं मानवनिर्मित सभी प्रकार के स्रोतों से क्षेत्र में उपस्थित होने का लेखा जोखा इस तरह बनाया जाता है कि वायुमण्डलीय माध्यम से प्राप्तियों को भी जोड़ लिया जाता है।

निर्धारक प्रतिवेदनों का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा प्राकृतिक, संलिष्ट या कृत्रिम पदार्थों से सम्बन्धित आंकड़े होते है क्योंकि इनके द्वारा सीधे-साधे अथवा परोक्ष रूप से मानव अथवा समुद्री जीव अन्तुओं को हानि की सम्भावना रहती है। इन सभी आंकडों को एक वृहद् निर्धारण अध्ययन तथा अधुलनशील रसायनों के अतिरिक्त खाये जा सकने योग्य समुद्री जीवों के ऊतकों, खाध जाल के विभिन्न स्तरों में उपस्थित प्रजातियों तथा तलछट में उपस्थित छोटे-छोटे कणों तक को निर्धारण अध्ययन में समाहित किया जाता है।

निर्धारण प्रक्रिया का अगला पड़ाव होता है भौतिक समुद्रविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रसायनों का परिवहन, चक्रीकरण एवं नियति। तलकर्षण, जलीय प्रवाह एवं खनिज दोहन जैसी प्रक्रियाओं के अतिरिक्त वायुमंडलीय घटकों की भी समीक्षा की जाती है जिससे कि क्षेत्र में होने वाले तत्वों के वितरण के प्रभाव की जानकारी हो सके। क्षेत्र की रासायनिक संघटना में हुये परिवर्तनों को समझने के लिए वह आवश्यक होता है कि विशिष्ट तत्वों की आवा-जाही, मानवीय तथा प्राकृतिक प्रक्रियाओं का सही-सही आकलन किया जाये।

क्षेत्र की जैविकी एवं पारिस्थितिकी की एक व्यापक सूची बनाना भी बहुत जरूरी होता है। विभिन्न समुदायों एवं प्रजातियों के अतिरिक्त उनके प्राकृतिक वास, शिकार एवं शिकारी सम्बधों, विपुलता के पैमानों, सूचक एवं मूल प्रजातियों की उपस्थिति इत्यादि सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है। सूची का निर्माण इस प्रकार से होता है कि दोहित किये जाने वाले सभी जीवन्त समुद्री संसाधनों जैसे मछली, झींगा, समुद्री घास इत्यादि की पहचान हो जाये। जहाँ तक सम्भव होता है इन संसाधनों की आबादी का परिमाण, उनके अण्डे देने के स्थानों, भोजन के लिए चुनी जगहों तथा उन प्रजातियों व संसाधनों का विवरण जिन्हे भोज्य बनाकर यह संसाधन वृद्धि करते है आदि सभी जानकारियाँ सूची में भरी जाती हैं।

दोहन योग्य जातियों के अस्थायी तथा स्थानिक उतार चढाव की सूचना भी इकट्ठी की जाती है। इन सूचनाओं को विशेष प्रजातियों व विशेष परिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य में उनकी आबादी तथा विचलन की कसौटी पर परख कर प्राकृतिक अथवा मानवीय कारणों में वर्गीकृत करके रखा जाता है। ऐसा करते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि परिलक्षित उतार चढाव कहीं प्रजाति अथवा वास के प्रतिसंवेदन अथवा किसी रोग या विषाक्तता के कारण तो नहीं है। यह सभी सूचनाये या तो शोध कार्य अथवा द्वितीयक आंकडों के स्रोत से प्राप्त की जाती है।

उक्त वर्णित सोपानों के माध्यम से जब विहंगम आकृति का निर्माण हो जाता है तो पर्यावरण एवं प्रमुख प्राकृतिक वासों में हो रहे परिवर्तनों एवं उनके कारणों की व्याख्या की जाती है। इन परिवर्तनों को किसी विशिष्ट क्रिया के साथ जोडने का प्रयास किया जाता है जैसे कि मात्स्यिकी की तकनीक, तटवर्तीय अन्तरस्थलीय विकास, मैंग्रोव, कोरल अथवा मृदा तटों का क्षरण इत्यादि।

समुद्र तथा मानवीय जीवन एवं स्वास्थ्य पर प्रदूषण के कारण हो रहे दुष्प्रभावों का आकलन भी किया जाता है। इसमें घरेलू एवं औद्योगिक कारणों को वर्गीकृत करने के उपरान्त दोहित तथा अदोहित प्रजातियों के ऊतको में प्रदूषकों की मात्रा नापी जाती है। जब किसी भी गतिविधि के पर्यावरणीय महत्व के बारे में संशय होता है तो जोखिम निर्धारण का कार्य किया जाता है। समुद्री जीवों के ऊतको में अवस्थित रसायनों, सूक्ष्म जीवियों तथा विषाक्त शैवालों के कारण हो सकने वाले प्रभावों का मानव स्वास्थ्य हेतु जोखिम निर्धारण किया जाता है।

इस प्रकार पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण हेतु विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियों का क्रमबध्द रूप में इस प्रकार समायोजन किया जाता है जिससे कि पर्यावरण में हो चुके अथवा हो

रहे नुकसान को रोकने के लिये समस्त आवश्यक कदम उठाये जा सकें। यह अध्ययन वैज्ञानिक शोधन एवं विश्लेषण में मौजूद रिक्त स्थानों को भी उजागर करता है तथा क्षेत्रीय परिस्थितियों का समाकलन अत्यंत प्रभावशाली ढंग से करके पर्यावरणीय संरक्षण हेतु उठाये जा रहे कदमों की समीक्षा प्रस्तुत करता है।

परिस्थिति सुधारने के लिये उठाये जाने वाले उपायों के विवरण के अलावा उक्त तरीका हमें यह भी बोध कराता है कि भविष्य में अगले निर्धारण की आवश्यकता कब होगी।

अन्त में हमें यह समझना आवश्यक है कि यद्यपि कि पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण आज संसाधन प्रबन्धन प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है परन्तु इसकी भी अपनी निश्चित सीमायें है। पर्यावरण में हो सकने वाले किसी भी परिवर्तन की भविष्यवाणी में थोडी सी अनिश्चितता तो समाहित रहेगी ही। वैज्ञानिकों के सम्मुख महत्वपूर्ण चुनौती इसी अनिश्चितता की मात्रा को कम करना है। इस कार्य के सम्पादन में प्राप्त किये जाने वाले आंकड़ो को सही प्रकार से इकठ्ठा करके उनमें अन्तरनिहित अनिश्चितताओं को यथासंभव कम करने के उपरांत परिणाम एवं निष्कर्ष प्रदान किये जाते है। पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण हेतु केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान का मात्स्यिकी पर्यावरण और प्रबन्धन प्रभाग सलाहकार सेवायें उपलब्ध कराता है तथा प्रभाग में इस कार्य के सम्पादन हेतु आवश्यक सुविधायें तथा योग्य कर्मचारी विद्यमान हैं। ●

लक्षद्वीप की समुद्री अलंकार मछली संपदाएं

सी एम एफ आर आइ विशेष प्रकाशन सं. 72, मार्च 2002

आइ एस एस एन : 0972-2351

वी. श्रीरामचंद्र मूर्ति

लक्षद्वीप में किए गए सर्वेक्षण के आधार पर वहाँ के प्रमुख अलंकार मछलियों की विभिन्न जातियों के जीवविज्ञान और स्टॉक निर्धारण के आंकडे और सूचना सम्मिलित करके तैयार की गई भारत की ही पहली पुस्तक है । इस में लगभग 100 जाति मछलियों के रंगीन फोटोचित्र दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त द्वीप की प्रमुख जातियों की विभिन्न कुटुम्बों और जातियों की सापेक्षिक प्रचुरता, लंबाई आंकडा और वृद्धि का कर्व रंगीन लेखाचित्रों के साथ दिया गया है । पुस्तक में 165 जातियों के आकार, पकड और लक्षद्वीप में अलंकार मछली की मात्स्यिकी तथा प्रबंधन विकसित करने के लिए आवश्यक सुझाव दिया गया है । अनुसंधानकर्ताओं, नीति पालकों, मात्स्यिकी विकास संगठनों, निर्यातकों, आयातकों, अध्यापकों और छात्रों को संदर्भ लेने के लिए यह प्रकाशन अत्यंत सहायक निकलेगा।

यह पुस्तक 1/4 क्राउन आकार, 134 पृष्ठों, निर्यात आर्ट पेपर में बहुरंगों में मुद्रित, उत्कृष्ट बाइन्डिंङ और लामिनेटेड आवरण की है जिसका मूल्य : 600/- रुपए है ।

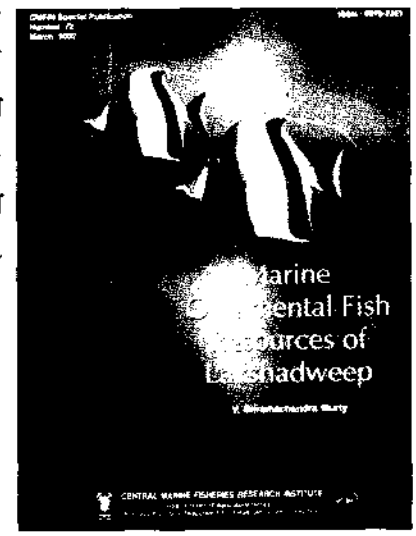

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी जल संसाधन - वर्तमान अवस्था तथा सम्भावनाएं

वी. वी. सुगुणन
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, प. बंगाल

भूमिका

भारत अपने विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण जलीय संसाधनों से समृद्ध देश है। अंत:स्थलीय जलीय संसाधनों की जितनी विविधता यहाँ पायी जाती है (नदियाँ, प्राकृतिक झील, ज्वारनदमुख, पश्चजल, मैनग्रोव, वेटलैंड आदि) वे विश्व के किसी अन्य देश में शायद ही उपलब्ध है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात जलाशय के रूप में अंत:स्थलीय जल संसाधन में एक नया आयाम जुड़ा है। वस्तुत: अंत:स्थलीय मात्स्यिकी जल संसाधन के दृष्टिकोण से भारत समूचे विश्व में अग्रणी है।

हाल के वर्षों में देश के मत्स्य उत्पादन में अंत:स्थलीय मात्स्यिकी का विशेष योगदान रहा है, विशेषकर वैसी स्थिति में जब समुद्री मात्स्यिकी में निरंतर कमी आ रही है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में उन्मुक्त मात्स्यिकी संसाधनों पर मानवकृत विभिन्न कार्यों का दबाव निरंतर बढ़ रहा है। फलस्वरूप मत्स्य तथा मात्स्यिकी पर विपरीत असर पड़ा है। वर्तमान में सबसे अधिक प्रभावित हमारी नदियाँ हैं। कारण विभिन्न विकास कार्यों हेतु नदियों का अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है यथा आवश्यकता से अधिक जल की निकासी, नदियों पर अनावश्यक बाँधों का निर्माण, आवाह क्षेत्र में हो रही गति-विधियों से नदियों में बढ़ते रेत, मलजल का निरंतर प्रवाह आदि प्रमुख हैं। आज स्थिति ऐसी है कि मात्र मात्स्यिकी ही नहीं अपितु अनेक मत्स्य प्रजातियाँ भी विनाश की कगार पर खड़ी हैं। नदियों की पारिस्थितिकी में एक प्रकार का बिखराव सा आ गया है, जो मत्स्य समुदाय के स्वभाविक बढ़ोतरी को विपरीत रुप से प्रभावित करता है। यही कारण है कि वर्तमान में नदियों से प्राप्त मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आयी है। एक तरफ तो उत्तम किस्म की मत्स्य प्रजातियों की संख्या तथा विकास दर में कमी आ रही है वहीं दूसरी ओर आर्थिक दृष्टिकोण से कम मूल्य वाली मत्स्य प्रजातियों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। समस्या गंभीर है अत: इस पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है।

बाढ़-बहुल आर्द्र क्षेत्रीय झील (वैटलैंड) वैसे तो अंत:स्थलीय मात्स्यिकी के परम्परागत श्रोत हैं तथा इनकी उत्पादन क्षमता भी बहुत अधिक है। परंतु वर्तमान में ये जल संसाधन अतिपोषकता की शिकार हैं। साथ ही अवांछित जीव-जन्तुओं जैसे कि खरपतवार तथा आर्थिक रुप से कम मूल्य वाली मत्स्य प्रजातियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। कुछ वर्ष पहले तक ये मात्स्यिकी संसाधन मत्स्य प्रग्रहण के लिए सर्वोत्तम श्रोत माने जाते थे क्योंकि इनका सीधा सम्बन्ध नदियों के साथ था। परंतु कालान्तर में बाढ़ नियंत्रण हेतु बाँधों के निर्माण, जल की अत्यधिक निकासी, कचरों का अनियंत्रित प्रवाह जैसे मानव अतिक्रमण के कारण ये जल संसाधन जर्जर अवस्था में है तथा इनका जिर्णोद्धार अविलम्ब आवश्यक है ताकि इनकी पारिस्थितिकी की गुणवत्ता को बचाते हुए अधिक से अधिक मत्स्य उत्पादन लिया जा सके।

हाल के वर्षों में हमारे देश में जलाशय संसाधन में विशेष तौर पर बढ़ोतरी हुई है। ये जल संसाधन भविष्य में

अंतःस्थलीय मत्स्य विकास हेतु एक प्रकार की धुरी बनकर उभरेंगे क्योंकि मात्र एक यही जलीय परितंत्र हैं जिसका विकास तथा शोषण अभी तक नहीं हो पाया है। हाल के वर्षों में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि इनमें मात्स्यिकी विकास की सम्भावनाएँ हैं।

भारत में अंतर्स्थलीय मत्स्य संसाधन

भारत में अंतर्स्थलीय मात्स्यकी संसाधनों की मात्र प्रचुरता ही नहीं है अपितु विविधता भी है (तालिका-1)

तालिका-1

संसाधन	लम्बाई/क्षेत्रफल (कि.मी./हे.)
नदी	45,000 कि.मी.
नहर	1,26,334 कि.मी.
ज्वारनदमुख	27,00,000 हे.
प्राकृतिक झील	2,10,000 हे.
खाराजल झील	14,22,000 हे.
जलाशय	30,20,000 हे.

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी की वर्तमान अवस्था

नदीय मात्स्यिकी

वर्तमान में भारत की नदियाँ एक प्रकार के संक्रमण की दौर से गुजर रही है क्योंकि मानव अतिक्रमण में आवश्यकता से अधिक बढ़ोतरी हो गयी है। इस अवस्था का सीधा प्राभाव मत्स्य उत्पादन के गुणवत्ता तथा परिमाण पर देखने को मिल रहा है। नदियों से प्राप्त प्रमुख मात्स्यिकी तथा भारतीय कार्प तथा हिल्सा में या तो उल्लेखनीय कमी आयी है अथवा बिल्कुल ही समाप्त सी हो गयी है। संसाधनों का विवेकहीन दोहन ही इस अवस्था का प्रमुख कारण है। पिछले कुछ दशकों में नदियों के साथ अत्यधिक छेड़-छाड़ से मछलियों के वास तथा प्रजनन स्थलों का लगभग विनाश हो गया है। केन्द्रीय अंतर्स्थलीय प्रग्रहण मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर द्वारा हाल में किये गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि वर्तमान में नदियाँ अपना प्राकृतिक स्वरूप खो चुकी हैं जिसका मुख्य कारण मानव द्वारा इनके जलधारा में किया गया अनावश्यक परिवर्तन है। नदियों की जलग्रहण क्षमता में उल्लेखनीय कमी आ गयी है क्योंकि रेत का अत्यधिक आगमन हो रहा है। ऐसा देखने को मिला है कि नदियों की तलछट में अत्यधिक बालु के जमाव से उत्पादन हेतु आवश्यक पोषक तत्वों के रिसाव में बाधा उत्पन्न हो रहा है जिसके कारण मछलियों के लिए आवश्यक प्राकृतिक मत्स्याहार की संख्या तथा प्रकार में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है।

सी.आई.एफ.आर.आई. द्वारा संग्रहित आंकड़ों से पता चलता है कि वर्तमान में गंगा नदी से प्राप्त मत्स्य उत्पादन मात्र 2.55 कि./हे./वर्ष (1989-99) अथवा इससे कम है, जबकि 1958 में यह उत्पादन 26.26 कि./हे./वर्ष था। इसी प्रकार फरक्का से ऊपर गंगा नदी में हिल्सा मछली का उत्पादन जो 1970 के दशक में कुल मत्स्य उत्पादन का लगभग 14% था वर्तमान में 1% से भी नीचे आ गया है। यही स्थिति भारत की अन्य प्रमुख नदियों का भी है।

वर्तमान संदर्भ में नदीय मात्स्यिकी का सुधार कठिन है क्योंकि नदियों का बहु आयामी उपयोग होता है। अतः आज की परिस्थिति में हमारी कोशिश तथा अग्रता इस बात पर होनी चाहिए कि मत्स्य प्रजातियों को कैसे बचाया जाय, क्योंकि अगर हमारी मत्स्य प्रजातियाँ लुप्त हो जाएं तो समस्त पारिस्थितिकी के बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो जायगा।

ज्वारनदमुख

ज्वारनदमुख विश्व की सबसे अधिक उत्पादनशील जलीय परितंत्र माने जाते हैं। हमारे देश में सौभाग्य से विश्व के सबसे अधिक उपजवाले ज्वारनदमुख उपलब्ध हैं यथा पश्चिम बंगाल में स्थित हुगली-मातलाह ज्वारनदमुख। लेकिन इधर कुछ वर्षों में इस ज्वारनदमुख की पारिस्थितिकी में भी उल्लेखनीय परिवर्तन आया है, जिसका प्रमुख कारण है फरक्का बाँध से अत्यधिक मीठाजल का प्रवाह। ऐसा देखने को मिल रहा कि इस ज्वारनदमुख के खारा जल क्षेत्र में तेजी से कमी आ रही है जो मत्स्य तथा मात्स्यिकी के लिए

प्रतिकूल है। इस विपरीत परिस्थिति के बावजूद नदी की तुलना में इस ज्वारनदमुख से लगभग 44,453.8 टन (1999-2000) मछली का उत्पादन मिल रहा है जो फरक्का निर्माण के पूर्व (1966-75) मात्र 9,481.5 टन था। इस बढ़ोतरी का प्रमुख कारण है हिल्सा उत्पादन में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि क्योंकि फरक्का बाँध के निर्माण से गंगा नदी में इसका पारगमन नहीं के बराबर हो रहा है और समुद्र से आनेवाली मछलियों के ज्यादातर भाग को यहीं पकड़ लिया जाता है। हिल्सा मात्स्यिकी की वर्तमान अवस्था का भविष्य में विपरीत तथा दूरगामी परिणाम देखने को मिल सकते हैं क्योंकि इस मछली के स्वभाविक दौड़ में बाधा उत्पन्न होने से यथोचित संख्या में ये मछलियाँ मीठे जल भाग में नहीं जा पा रही हैं। अतः इनके प्रजनन पर विपरीत असर पड़ रहा है जो कालान्तर में समुद्री हिल्सा की संख्या में कमी आ सकती है। फरक्का के निचले भाग को जिसे कभी विशुद्ध ज्वारनदमुख माना जाता था, अब अनेक मीठे जल के मत्स्य प्रजातियों का शिकार होने लगा है, जो इस बात को दर्शाता है कि इस ज्वारनदमुख के खारेपन में तेजी से कमी आ रही है, जो खारेजल में वास करने वाले अनेक प्रजातियों के लिए अशुभ संकेत है।

हुगली ज्वारनदमुख में स्थित *मैनग्रोव* क्षेत्र का विशेष महत्व है क्योंकि यह क्षेत्र अत्यधिक उपजाऊ होने के साथ ही अनेक प्रकार के मत्स्य प्रजातियों के लिए प्रजनन तथा चारागाह का कार्य करता है। *मैनग्रोव वेटलैंड* (क्रीक्स) अनेक प्रकार के मत्स्य तथा झींगा बीज हेतु अति उत्तम संसाधन है और हजारों लोगों के लिए बीज संग्रहण के माध्यम से रोजी-रोटी के साधन भी हैं। बंगाल में स्थित सुन्दरवन मैनग्रोव क्षेत्र जैव-विविधता का उत्तम स्रोत भी है क्योंकि यहाँ 18 प्रकार के झींगा, 34 प्रकार के केंकड़े, 120 मत्स्य प्रजातियाँ तथा 4 प्रकार के कछुए पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस जल क्षेत्र में 6 प्रकार के मेंढक, 13 प्रकार के साँप एवम् 2 प्रकार के घड़ियाल पाये जाते हैं। वैसे यह क्षेत्र भी मानव अतिक्रमण से वंचित नहीं हैं अतः इस क्षेत्र के जल तथा थल दोनों ही संसाधनों में तेजी से कमी आ रही है। अत्यधिक झींगे के बीजों के संग्रहण के परिप्रेक्ष में इस जलीय परितंत्र की मात्स्यकी पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। साथ ही मैंनग्रोव पेड़ों का विनाश भी निरंतर जारी है। वस्तुस्थिति ऐसी है कि इस अतिसंवेदनशील जलीय परितंत्र का वास्तविक स्वरूप खतरे में है जिसका संरक्षण आवश्यक है।

बाढ़-बहुल तलक्षेत्र में स्थित झील संसाधन

गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदी तलक्षेत्र में पाये जाने वाले लगभग 2.20 मिलियन हेक्टर प्राकृतिक झील मात्स्यकी के अति विशिष्ट पारंपरिक स्रोत माने जाते हैं। ये झील जैव-विविधता के भी अनन्य स्रोत हैं, क्योंकि इनका सीधा संबंध नदियों से है। पिछले कुछ दशकों में इन प्राकृतिक मात्स्यकी संसाधनों की पारिस्थितिकी बद से बदत्तर हुई है। ये झील वर्तमान में अतिपोषकता से ग्रसित हैं और तेजी से दल-दल में परिवर्तित होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। कारण मानवकृत विभिन्न कार्य-कलापों के परिपेक्ष में इनके उत्पादन प्रक्रिया में एक प्रकार से बिखराव आ गया है। दिन-प्रति-दिन के दूषण भार में बढ़ोतरी हो रही है और इन झीलों के मत्स्य अवांछित जीव-जन्तुओं की संख्या में अत्यधिक वृद्धि देखने को मिल रही है। झीलों में उत्पादन तथा जैव-विविधता को सबसे अधिक प्रभावित किया है बाढ़ नियंत्रण हेतु बनाए गये बाँधों ने, क्योंकि इनके निर्माण के पूर्व ये नदियों से जुड़े होने के कारण इनमें उत्तम किस्म के मत्स्य बीजों का प्रत्यारोपण स्वाभाविक रुप से होता था, जो अब नहीं हो पाता है क्योंकि ये अलग-थलग से पड़ गए हैं। अतः मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय कमी आयी है। इसके अतिरिक्त इन झीलों में कचरा तथा रेत की मात्रा में अत्यधिक प्रवेश से इनकी गहराई में भी कमी आयी और ये झील अवांछित खरपतवारों के जंगल बनकर रह गए हैं। संक्षेप में इन झीलों की पारिस्थितिकी की समीक्षा दो अवस्थाओं में की जा सकती है:

- अत्यधिक अतिपोषकता की स्थिति
- आवश्यक पोषक तत्वों का खरपतवारों द्वारा अत्यधिक खपत से अन्य जीव-जन्तुओं हेतु आवश्यकता से कम मत्स्याहार की उपलब्धता।

इन दोनों ही स्थिति में खाद्य श्रृंखला पर विपरीत असर पड़ा है और मत्स्य उत्पादन हेतु आवश्यक प्राकृतिक आहार तथा संख्या में आवश्यकता से अधिक कमी आ गई है।

सी.आई.एफ.आर.आई द्वारा संचयित आंकड़ों से पता चलता है कि इन झीलों की उत्पादन क्षमता 1000-2000 किलो/हेक्टर/वर्ष है। परंतु वर्तमान में इन से औसतन मात्र 160-350 किलो/हेक्टर/वर्ष उत्पादन ही प्राप्त होता है। वैसे *सी.आई.एफ.आर.आई* ने इन झीलों के वैज्ञानिक प्रबंधन हेतु ठोस प्रणालियों का विकास किया है और आशा की जाती है कि भविष्य में इनसे अधिक मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा।

ये झील *पेन-कल्चर* के लिए भी उत्तम स्रोत हैं और *सी.आई.एफ.आर.आई.* के पास तकनीक भी उपलब्ध है। अत: भविष्य में पेन कल्चर का यथोचित विस्तार से भी उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

खाराजलीय (वैटलैण्ड) आर्द्र क्षेत्र

भारत में उपलब्ध खाराजलीय आर्द्र क्षेत्र में मछली तथा झींगा पालन की अत्यधिक संभावनाएँ हैं। वर्तमान में इन मात्स्यकी संसाधनों से 770-1360 किलो/हेक्टर/वर्ष की उत्पादन प्राप्त होता है। *सी.आई.एफ.आर.आई* द्वारा संचयित आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर इनके उत्पादन को 2000 किलो/हेक्टर/वर्ष किया जा सकता है। इस संभावित उत्पादन में झींगा उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत होगा ऐसी संभावना है।

जलाशय

भारत में जलाशय मात्स्यकी विकास की प्रचुर संभावनाएँ हैं। वर्तमान में इस संसाधन से प्राप्त औसत मत्स्य उत्पादन इनके उत्पादन क्षमता से बहुत कम है। वर्तमान में अनुमानित औसत उत्पादन 49 किलो/हेक्टर/वर्ष छोटे जलाशय तथा 14 किलो/हेक्टर/वर्ष (मध्यम तथा बड़े जलाशय) हैं जबकि इन जलाशयों की मत्स्य उत्पादन क्षमता 100 किलो/हेक्टर/वर्ष (बड़े जलाशय) तथा 300 किलो/हेक्टर/वर्ष (छोटे जलाशय) आंकी गई है।

जलाशय संसाधन से प्राप्त इस निम्न स्तर के उत्पादन का प्रमुख कारण है वैज्ञानिक प्रबंधन का अभाव। *सी.आई.एफ.आर.आई* द्वारा विकसित प्रबंधन प्रणालियों को अपनाकर अनेक राज्यों ने जलाशय उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है। आशा की जाती है कि भविष्य में वैज्ञानिक प्रबंधन में तेजी आयेगी और इस मात्स्यकी संसाधन से हमें आशानुकूल मत्स्य उत्पादन प्राप्त हो सकेगा।

उन्मुक्त जल संसाधन में मात्स्यकी विकास की संभावनाएँ और विकास नीति

नदियाँ

- समन्वित नदी प्रबंधन पर विशेष जोर देने की आवश्यकता,
- नदी तथा इसके अवाह क्षेत्रों में हो रहे कार्य कलापों को ध्यान में रखकर मत्स्य विकास की योजना का निर्माण तथा निष्पादन,
- पर्यावरणीय नियमों का सही तौर पर पालन हेतु युक्तिसंगत कानूनों को लागू करना ताकि जैव-विविधता का संरक्षण हो सके।

बाढ़ बहुल आर्द्र क्षेत्रीय झील (वैटलैण्ड)

- उपलब्ध झीलों का इनके भौतिक अवस्था के अनुरूप वर्गीकरण (यथा बंद झील तथा खुले झील) कर के प्रबंधन,
- खुले झीलों में मत्स्य प्रग्रहण पर अधिक जोर क्योंकि

नदियों से इनमें प्राकृतिक मत्स्य बीज प्रत्यारोपण होता है,

- खुले झीलों के मत्स्य गतिकी तथा मत्स्य स्वाभाविक बीज प्रत्यारोपण का आकलन कर मत्स्य प्रबंधन की रूपरेखा तैयार करने की आवश्यकता,
- झीलों में स्थित प्राकृतिक प्रजनन स्थलों का संरक्षण पर विशेष जोर,
- अप्राकृतिक मात्स्यकी यथा चट्टी जाल के प्रयोग आदि पर अविलम्ब रोक,
- बंद झीलों की मात्स्यकी प्रबंधन हेतु आवश्यक मत्स्य बीज प्रत्यारोपण पर विशेष जोर।

जलाशय

- बड़े तथा मध्यम जलाशयों के प्रबंधन हेतु इनमें मत्स्य बीज का प्रत्यारोपण आवश्यक है, जो 250 प्रति हेक्टर की दर से किया जा सकता है, ताकि प्राकृतिक प्रजनन में बढ़ोतरी कर मत्स्य उत्पादन में यथासंभव वृद्धि की जा सके।
- इन जलाशयों में प्रत्यारोपित करने वाले मत्स्य बीजों का आकार 100 मी.मी. से कम नहीं होना चाहिए ताकि मृत्यु-दर को कम किया जा सके। साथ ही ये आसानी से शिकारी मछलियों का ग्रास न बन सकें। अगर किसी जलाशय में शिकारी मछलियों की संख्या अधिक हो तो प्रत्यारोपण दर की संख्या 600 प्रति हेक्टर होनी चाहिए। नव निर्मित जलाशयों में यह संख्या 1000 प्रति हेक्टर होनी चाहिए।
- हमारे देश में उपलब्ध संसाधन का लगभग 50% भाग छोटे जलाशयों का है जो प्रबंधन हेतु अति उत्तम हैं। *सी.आई.एफ.आर.आई.* द्वारा सम्पादित अनुसंधानों से स्पष्ट है कि छोटे जलाशयों की उत्पादकता में अल्प समय में ही कई गुणे की वृद्धि की जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि इनमें सही प्रकार तथा सही अनुपात में मत्स्य बीज प्रत्यारोपित हो।

ज्वारनदमुख

- ज्वारनदमुख की मात्स्यकी प्रबंधन हेतु मत्स्य प्रग्रहण प्रक्रियाओं में युक्ति संगत परिवर्तन आवश्यक है। यथा मत्स्य जाल तथा संभारों का सही उपयोग, मत्स्य तथा झींगा बीजों, मत्स्य अंगुलिकाएँ तथा प्रजनक मछलियों का संरक्षण, झींगा पालन हेतु ज्वारनदमुख से संचयित बीज पर अविलम्ब रोक, प्रदूषण नियंत्रण पर जोर, मैनग्रोव क्षेत्रों का यथाशक्ति संरक्षण आदि।

झींगा हैचरियों का पंजीकरण

झींगा पालन में बीजों का महत्वपूर्ण स्थान है विशेषकर, तन्दुरस्त झींगा बीजों का। झींगा कृषकों को ऐसे स्वस्थ बीजों की उपलब्धि सुनिश्चित करने केलिए देश में एक पंजीकरण व्यवस्था शुरू कर रहे हैं कोचीन के समुद्री उपाद निर्यात विकास प्राधिकरण (MPEDA) द्वारा. आकलनों के अनुसार वर्ष 1995 से लेकर पालन खेतों में होनेवाले झींगा रोगों से करीब 15000 टन झींगों का सर्वनाश होता है जिस से होनेवाला नष्ट 350 करोड रुपये हैं। झींगा पालन खेतों में होने वाला रोग बाधा का मुख्य कारण हैचरी में उत्पादित करनेवाले बीजों का अनारोग्य माना गया है। पंजीकरण रीति से इस उद्योग की सुरक्षा प्रत्याशित है।

- फिश फार्मिंग इन्टर्नाशनल से साभार

नदी प्रवाह और तटीय उत्पादकता

पी. कलाधरन
केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन, केरल

प्रस्तावना

विश्व के महासागरों की उप तटीय मेखलाओं के भाग है नदीय ज्वारनदमुखीय व्यवस्थाएं। इस मेखला में, पादप और जंतुजातो और इनके पर्यावरण के बीच का आपसी संबंध व परिवर्तन अन्य भू-भाग और जलीय मेखलाओं की अपेक्षा सैकडों गुना अधिक है। उत्तर - दक्षिण गोलार्धों के महा समुद्रों और अंतर्देशीय समुद्रों की तटीय क्षेत्रों की भौतिक विशेषताओं और जीव वैज्ञानिक उत्पादकता व्यवस्थाओं के प्रवर्तनों के प्रभाव के बारे में जल-वैज्ञानिकों तथा महा समुद्री वैज्ञानिकों के समूह ने बखान किया है। जमानों से मान लिया गया है कि नदी के अंतरवाह और वाहिस्राव से होनेवाला डेल्टा से लवणजल प्रवेश् रोका जाता है और प्राकृतिक एवं मानव द्वारा बनाए गए प्रदूषकों को नदीमुख भूमि से निकाल कर ज्वारनदमुखीय तटीय पारिस्थितिक तंत्र को उच्च स्तर पर पोषक प्रदान किया जाता है।

अनवरुद्ध खुलो नदियाँ प्रवाही नदीमुखों, नदोमुख भूमि और तटीय क्षेत्रों को असंख्य जीवाधार प्रक्रियाएं प्रदान करती है जिन पर स्वास्थ्य पूर्ण मात्स्यिकी पलती है। इन प्रक्रियाओं में नाइट्रजन कार्बनिक वस्तुओं और पोषक समृद्ध गाद का परिवहन, ऑक्सिजन का समृद्धि, नितलस्थ अवसादों में पोषक का वृद्धि प्रदूषकों का तनूकरण व बहाव सम्मिलित हैं। किसी भी जल प्रबंध द्वारा अगर नदी प्रवाह 25% तक कम हो जाता है तो इसका प्रतिकूल प्रभाव तटीय और ज्वारनदमुख मात्स्यिकी पर पड जाता है जिसके फलस्वरूप मछली पकड भी घट जाती है। प्रवाह कम होते यह असर और भी गंभीर हो जाता हे और इस से नाश हुई मात्स्यिकी

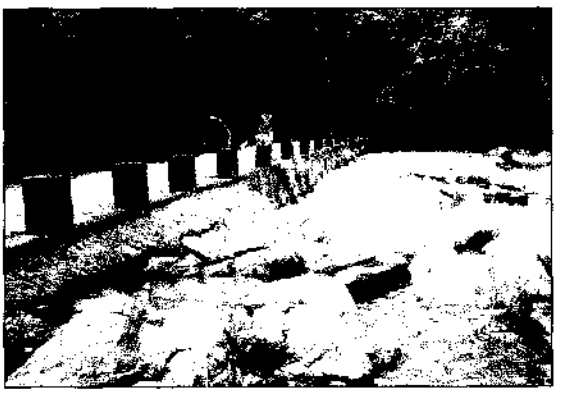

बाँधों से पर्यावरण पर विपरीत असर

की प्रतिस्थापना के लिए कोई भी स्फुटनशाला प्रौद्योगिकी पर्याप्त नहीं हो जाएगी बांधों और जलाशयों की वजह से पहले ही कई मछलियां का ह्रास हो चुका है। फिर भी, ऊर्जा उत्पादन के हितकारी विकल्प के रूप में बनाए गए बांध और उनके जलाशय पर्यावरण पर कई असर डालते हैं। बांधों और जलाशयों के निर्माण से नदियों के प्राकृतिक प्रवाह में +25% से –30% की घटती हो गई है जिस के फलस्वरूप मात्स्यिकी में भी परिवर्तन हो गया है। इसका प्रतिकूल प्रभाव नदीमुख जलाशयों के परिस्थितिक तंत्र में व्यतियान व हानि और इस से उदभूत समाज आर्थिक स्थितियाँ खडो की हैं।

आघात

नदी प्रवाह रोकने और बांधों के निर्माण से नदीमुख के तटीय समुद्री परिस्थिति में प्रमुख परिवर्तन होता है जो निम्नलिखित है:

1. लवणता में बढ़ती

2. जैविक - अजैविक वस्तुएं व अवसाद

3. प्रदूषकों को निकालने में ज़्यादा समय लगना

4. नदीमुखों तथा समुद्री पारिस्थितिकी द्वारा प्रदूषकों की ग्रहणशीलता बढ़ जाना।

5. वाणिज्यिक प्रमुख समुद्री मछली संपदाओं (चिंगट, झींगा, मोलस्क, समुद्री शैवाल आदि) के प्रवास मार्ग और अंडजनन धरातल रोकना या नाश करना।

ऊर्जा उत्पादन, बाढ़ नियंत्रण या सिंचाई केलिए बांध निर्माण या प्रवाह की दिशा बदलने के परिणाम ये हुए है कि समुद्र में अलवणीय या मीठा पानी के प्रवाह में कमी या बदलाव, नदीमुख भूमि और भीगी भूमि में अवसाद के प्रवाह में कमी और मछलियों के अंडजनन स्थानों का नाश आदि है। इन स्थितियों से मात्स्यिकी में घटती, प्रणिसंधातों का नाश, प्रदूषकों की मात्रा में बढ़ती, चारों ओर की तटीय निम्न भूमि में लवणता की बढ़ती और नदीमुखों के भूमि के नीचे जाना का समग्र परिवर्तन आदि संभव होता है।

नदी प्रवाह में होने वाले परिवर्तन से तटीय समुद्र में और इसके नितल भाग के अवसादों में बडी मात्रा में प्रदूषक पहूँच जाते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रदूषक सम्मिलित हैं:

1. भारी लोहा (उदा: आरसनिक, कैडमियम, क्रोमियम, कोपर, लेड, मेरक्युरी, निक्कल, सिल्वर, सेलेनियम और ज़िंक);

2. पोषक, (उदा: फोसफरस तथा नाइट्रजन अमोनिय, नाइट्रेट्स और नाइट्राइट्स)

3. बैक्टीरिसर और वाइरस (रोगजनक)

4. अवसाद और

5. जैव कचरा

भारतीय उपमहाद्वीप के 7,000 कि मी की लंबी तट रेखा बहुत सारी नदियों तथा नदी मुखों से अवरुद्ध पड गई है। भारत की नदियों याने कि बडी मध्यम और छोटी-को मिलानेपर 1,645 कि मी पानी प्रवाह होना है जबकि अरब सागर में केवल 345 कि मी पानी पहूँचा जाता है (प्रथम सिटिसन रिपोर्ट, 1996)। कारण यह है कि अधिकांश नदियों में जल-बिजली और सिंचाई के उद्देश्य से बांध बनाए गए हैं। अगली सदी के अंत में हमारे देश में बेहत्तरी सिंचाई, जल-बिजली उत्पादन, शुद्ध जल वितरण तथा बाढ़ नियंत्रण के उद्देश्य से कई बडे और छोटे बांध बनाए जाएंगे। वर्ष 2050 में हमारे बांधों तथा जलाशयों की संभरण क्षमता 174 बिलियन मी^{3} (1997) से 600 बिलियन मी^{3} तक बढ़ाई जाएगी। वर्तमान स्थिति में, नदी प्रवाह के परिवर्तन बांधों तथा जलशयों की वजह से भारत के पूर्व एवं पश्चिम तट की नदीमुखों और तटीय समुद्र पर पडे आघातों के बारे में कोई वैज्ञानिक सूचना प्राप्त नहीं हुई है।

परिणाम

केरल में हाल में किए गए अध्ययनों ने समुद्र में प्रवाहित होनेवाले पानी के घटक में पर्याप्त व्यतियान दिखाया है। अवरुद्ध नदी के रूप में पांच से अधिक जल-बिजली और सिंचाई बांध होने वाली और मुनम्बम में मिलने वाली पेरियार नदी (10°11'18.5"N से 10°37'09"N और 76°14' 45.6"E) को और अनियंत्रित या बांध मुक्त नदी के रूप में माही नदी जिसपर कोई भी बांध नहीं है (11°40' 49"N से 11°41' 40"N और 70°34' 46"E से 70° 30' 18"E) को तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना गया।

बांधों युक्त और बाँधमुक्त नदी प्रवाह से होने वाला संघात नीचे दी गई सारणी से स्पष्ट किया इस से बांध मुक्त और बांध युक्त नदी व्यवस्थाओं से नदी और समुद्र जल की विशेषताएं भी स्पष्ट हो जाती है।

सारणी

प्राचल	बांध युक्त नदी	बांध मुक्त नदी
एन एच 3 (μg एटी/लि)	0.40	0.79
पी ओ 4 (μg एटी/लि)	0.43	0.64
एस आइ ओ 3 (μg एटी/लि)	34.21	37.90
एन.ओ. 2 (μg एटी/लि)	0.11	0.86
एन.ओ 3 (μg एटी/लि)	9.06	12.25
तापमान (सी)	28.42	28.29
लवणता (पी पी टी)	17.67	19.19
पी एच	8.1	7.96
सकल उत्पादन (मि.ग्रा.सी/ली/घं)	0.06	0.061
निवल उत्पादन (मि.ग्रा.सी/ली/घं)	0.043	0.55
बी ओ डी (मि.ग्रा/ली)	1.21	1.23
सी ओ डी (मि.ग्रा/ली)	40.87	71.54
टी.एस.एस (मि.ग्रा/ली)	27.23	43.42
टी.डी.एस (ग्रा/ली)	25.03	20.47
क्लोरोफिल ए (मि.ग्रा/मी^{3})	0.48	0.72

इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रमुख प्राचल बाँध मुक्त नदी में उच्चतम है और बांघ युक्त नदी में बाँध के आघात और पानी की अवरुद्धता के कारण पोषक, उत्पादकता और हरितक की मात्रा बाँधमुक्त नदी की अपेक्षा बहुत कम है। पिछले और आगामी वर्षों में मात्स्यिकी के प्रकार में हुए और होनेवाले परिवर्तन और तटीय क्षेत्रों के समाज-आर्थिक स्तर के बारे में संकेत करने केलिए यह अध्ययन सहायक निकलेगा। ●

दुनिया का सब से बडा मछली संसाधन फाक्टरी

फारो द्वीप समूहों में नेथरलेन्ड के फरो सीफुड और क्लस्टेरबोयर अपने सहयोग से दुनिया के सब से बडा वेलापवर्ती मछली संसाधन संयंत्र की स्थापना कर रहे हैं। इस संयंत्र का दैनिक उत्पादन क्षमता 1000 मेट्रिक टन होगा। कापेलिन, हेरिंग, बाँगडा आदि मछलियों का संसाधन यहाँ किया जायेगा। इसका मुख्य विपणन केंद्र यूरोपिया फार ईस्ट, नेथरलेंड आदि देश होंगे जहाँ वेलापवर्ती मछलियाँ पसंदीदा मानी गई है। बाज़ार मांग के अनुसार शीतिति और निर्वातित रूप में उत्पाद का विपणन किया जायेगा। संयंत्र में पकडी गई मछलियों के संभरण, शीतीकरण, निर्वातित पैकिंग की सुविधा होगी। अतिशीतन यंत्र की रूपकल्पना इस प्रकार की गई है कि शीतित मछलियों के निकालने के तुरंत बाद ही अगले बैच का संभरण हो जाय। अतः उच्च आटोमेशन रीति से संयंत्र की रूपकल्पना की गई है।

- फिश फार्मिंग इन्टर्नाशनल से साभार

नीली क्रांति में मानव संसाधन विकास की भूमिका

राजेश्वर उनियाल एवं एस. अय्यप्पन
केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, वरसोवा, मुंबई, महाराष्ट्र

आज भारत नीली क्रांति के अंतर्गत अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर सतत रूप से प्रयासरत है। हमारे वैज्ञानिकों, कृषकों व उद्यमियों के प्रयासों के फलस्वरुप आज हम मत्स्य पालन के क्षेत्र में विश्व में तीसरे स्थान पर पहुंच चुके हैं। आज भारत में प्रतिवर्ष 58 लाख टन मत्स्य उत्पादन हो रहा है तथा इस क्षेत्र में लगभग 70 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है। भारत का सकल घरेलू उत्पादन में मात्स्यिकी का योगदान 1.4 प्रतिशत है। इसके निर्यात से हमें प्रतिवर्ष 6,300 करोड़ रुपया तक की विदेशी मुद्रा प्राप्त हो रही है तथा हम 6% प्रतिवर्ष की वृद्धि दर की ओर अग्रसर है। वर्तमान में कुल मात्स्यिकी उत्पादन में से 28.34 लाख टन समुद्र से एवं 28.32 लाख टन आन्तरस्थलीय क्षेत्र से अर्थात कुल 56.66 लाख टन प्रतिवर्ष प्राप्त हो रहा है।

भारत में कुल 1 लाख 71 हजार 334 कि.मी. लम्बी नदियां, नहरें आदि हैं। इसी के साथ 2.050 मिलियन हेक्टेयर जलाशय, 2.3553 मिलियन हेक्टेयर पोण्ड/टैंक, 1.069 मिलियन हेक्टेयर बील, झील आदि तथा 1.422 मिलियन हेक्टेयर पश्च जल उपलब्ध है।

इतनी अथाह जल संपदा व मानव संसाधन के होते हुए भी अभी भारत में मत्स्य उत्पादन लगभग एक तिहाई ही क्षेत्रों में किया जा रहा है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत में मात्स्यिकी क्षेत्र में मानव संसाधन विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।

मानव संसाधन विकास के अंतर्गत लोगों को इस क्षेत्र में

1. उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान करना
2. पुनश्चर्या/विशेष पाठ्यक्रम संचालित करना तथा

भारत का मात्स्यिकी विश्वविद्यालय, केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, मुंबई

3. अल्पकालीन प्रशिक्षण संचालित करना आदि है। अभी तक भारत में लगभग 12,000 लोगों को मात्स्यिकी विषय में प्रशिक्षित कराया जा चुका है जबकि भारत में लगभग 2 लाख लोगों को प्रशिक्षित कराने की आवश्यकता है।

मात्स्यिकी में शिक्षा प्रदान करने की दिशा में सर्वप्रथम भारत सरकार ने 1944 में मत्स्य उप समिति का गठन किया था। सन् 1947 में बैरकपुर (प. बंगाल) एवं मंडपम (तमिलनाडु) में 2 प्रशिक्षण केन्द्र प्रारंभ किए गए। 6 जून 1961 को मुंबई में केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान की स्थापना की गई। प्रारंभ में इस संस्थान से राज्य सरकार में कार्यरत मत्स्य अधिकारियों को 2 वर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा प्रदान किया जाता था। 1 अप्रैल 1979 से यह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत आ गया। 29 मार्च 1989 से इस संस्थान को समतुल्य विश्वविद्यालय की मान्यता प्रदान की गई।

इस प्रकार अब यह संस्थान भारत का मात्स्यिकी विषय का पहला विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त कर चुका

है। इस संस्थान से एम.एफ.एस.सी. एवं पी.एच.डी. स्तर के पाठ्यक्रम (समर स्कूल), पुनश्चर्या पाठ्यक्रम एवं अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संचालित किए जाते हैं। इसके साथ ही भारत में 12 मत्स्य महाविद्यालय है जिनमें से 6 महाविद्यालयों में एम.एस.सी. व 3 महाविद्यालयों में पी.एच.डी. स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है (तालिका 1)। इनके अतिरिक्त 9 महाविद्यालयों में मात्स्यिकी से संबंधित पाठ्यक्रम संचालित किए जाते है (तालिका 2)। आई.आई.टी. खडगपुर (प. बंगाल) में एम.टेक (जलीय संवर्धन इंजिनियरिंग) का पाठ्यक्रम भी चलाया जाता है।

भारत में वर्तमान में प्रतिवर्ष 200 स्नातकोत्तर, 14,000 स्नातक तथा 23,000 प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता है।

केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान अपने नियमित पाठ्यक्रम के साथ ही प्रत्येक वर्ष अपने मुख्यालय और सभी उपकेन्द्रों में अल्पकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संचालित करता है। इस संस्थान से अब तक लगभग 4500 लोगों को प्रशिक्षित करा दिया गया है।

इस संस्थान एवं मत्स्य महाविद्यालयों के साथ ही विभिन्न राज्यों की मत्स्य पालक विकास एजेन्सियां भी मछुआरों व मत्स्य उद्यमियों को प्रशिक्षण देती है। सन् 1999-2000 तक भारत में कुल 422 एफ.एफ.डी.ए. ने 6,34,108 लोगों को प्रशिक्षण दिया है जो कि प्रशिक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

भारत सरकार द्वारा मीठा पानी जलकृषि विषय पर गठित हाई लेवल एक्सपर्ट कमिटी ने अपने प्रतिवेदन में मानव संसाधन से संबंधित महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए है। इनमें से प्रमुखतः भारत में मीठा पानी जलकृषि क्षेत्र में अनुसंधान, सरकारी विकास, विस्तार क्षेत्र, उद्यमी एवं छोटे एवं मध्यम स्तर के मत्स्य पालकों को मानव संसाधन विकास के अंतर्गत प्रशिक्षित कराया जाए तथा प्रशिक्षण में आधुनिक तकनालाजी को बढ़ावा दिया जाए।

तालिका - 1

भारत में स्नातक एवम् स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम संचालित करने वाले मात्स्यिकी महाविद्यालय

क्र. सं.	मात्स्यिकी महाविद्यालय का नाम एवम् पता	संचालित पाठ्यक्रम (1,2 एवम् 3)
1.	कालेज ऑफ फिशरीज (यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रिकल्चरल सायन्स) मंगलौर - 575 002, कर्नाटक	1,2 एवम् 3
2.	फिशरीज कालेज (तमिलनाडु वेटेरिनरी एण्ड एनीमल सायन्स यूनिवर्सिटी) ट्यूटिकोरिन- 628 008, तमिलनाडु	1,2 एवम् 3
3.	कालेज आफ फिशरीज (उड़ीसा यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रिकल्चरल एण्ड टेकनोलोजी) रंगाईलूंडा, बेहरमपुर - 760 007, उड़ीसा	1,2 एवम् 3

4.	कालेज ऑफ फिशरीज (केरल एग्रिकल्चरल यूनिवर्सिटी) पनगड, पनगढ़, कोचीन - 682 506, केरल	1 एवम् 2
5.	फिशरीज कालेज (कोंकण कृषि विद्यापीठ) दापोली, रत्नगिरी, महाराष्ट्र - 415 712	1 एवम् 2
6.	कालेज ऑफ फिशरीज (जी.बी. पंत कृषि एवम् प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय) पंतनगर - 263 145, उत्तर प्रदेश	1 एवम् 2
7.	कालेज आफ फिशरीज (गुजरात एग्रिकल्चरल यूनिवर्सिटी) राजेन्द्र भवन रोड, वेरावल - 362 265, गुजरात	1
8.	कालेज ऑफ फिशरीज (राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय) मुज्जफरपुर, बिहार	1
9.	कालेज ऑफ फिशरीज सायन्स (आन्ध्र प्रदेश एग्रिकल्चरल यूनिवर्सिटी) नेल्लौर - 524 004, आंध्र प्रदेश	1
10.	कालेज ऑफ फिशरीज (असम एग्रिकल्चरल यूनिवर्सिटी) राहा, असम	1
11.	कालेज ऑफ फिशरीज (वेस्ट बंगाल यूनिवर्सिटी आफ एनीमल एण्ड फिशरीज सायन्सेस) वेल्लाछीया रोड, कलकत्ता, पश्चिम बंगाल	1
12.	कालेज ऑफ फिशरीज (सेंट्रल एग्रिकल्चरल यूनिवर्सिटी) लेम्बूचेरा, त्रिपुरा	1

1 = बी.एफ.एस.सी. 2 = एम.एफ.एस.सी. 3 = पी.एच.डी.

इन सभी महाविद्यालयों में मत्स्य विज्ञान में स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है, जबकि 6 महाविद्यालयों में एम.एस.सी. तथा 3 महाविद्यालयों में पी.एच.डी. स्तर की डिग्री संचालित की जाती है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विश्वविद्यालयों आदि में भी मात्स्यिकी विज्ञान से संबंधित विषयों में शिक्षा प्रदान की जाती है जिसका विवरण (तालिका 3) में दिया गया है।

(तालिका 2)

क्र. सं.	विश्वविद्यालय	विषय
1.	राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (कृषि महाविद्यालय, उदयपुर)	सरस जीव विज्ञान एवम् मात्स्यिकी एम.एस.सी. (कृषि)
2.	अन्नामलाई विश्वविद्यालय	समुद्रीय जीव विज्ञान एवम् मात्स्यिकी
3.	कर्नाटक विश्वविद्यालय	समुद्रीय जीव विज्ञान एवम् मात्स्यिकी
4.	केरल विश्वविद्यालय	जलीय जीव विज्ञान और मात्स्यिकी
5.	सुखाडिया विश्वविद्यालय	सरोवर विज्ञान
6.	भोपाल विश्वविद्यालय	मीठा पानी जीव विज्ञान एवं सरोवर विज्ञान
7.	गोवा विश्वविद्यालय	समुद्र विज्ञान एवम् जैव प्रौद्योगिकी
8.	आंध्र विश्वविद्यालय	समुद्र विज्ञान एवम् जैव प्रौद्योगिकी
9.	कोचीन विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय	औद्योगिक मात्स्यकी में स्नातकोत्तर

मत्स्य विज्ञान विषय का महत्व इस बात से भी प्रमाणित होता है कि सन् 1984 से आई.आई.टी., खड़गपुर (प.बंगाल) ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की जलीय संवर्धन समिति की संस्तुति पर एम.टेक. (जलीय संवर्धन इंजीनियरिंग) का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया है। इस पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु कृषि, सिविल, रसायण, नौचालन, आर्किटैक्चर या समुद्रीय इंजीनियरिंग में डिग्री की योग्यता है। पी.एच.डी. के लिए इंजीनियरिंग एवम् विज्ञान में स्नातकोत्तर के साथ ग्रेजुएट एपटिट्यूट टेस्ट इन इंजीनियरिंग (गेट) उत्तीर्ण होना चाहिए।

(तालिका 3)

के.म.शि.सं. मुंबई में संचालित शैक्षणिक स्नातकोत्तर कार्यक्रम

क्र. सं.	कार्यक्रम	कुल सीट	स्थान
1.	**स्नातकोत्तर (एम.एफ.एस.सी.)**		
	* मात्स्यिकी श्रोत प्रबंध	15	के.म.शि.सं., मुंबई
	* अन्तर्स्थलीय जलीय संवर्धन	15	के.म.शि.सं., मुंबई
	* समुद्री संवर्धन	10	सी.एम.एफ.आर.आई., कोचीन
	* मीठा पानी जलीय संवर्धन	5	सी.आई.एफ.ए., भुवनेश्वर
	* फसलोत्तर प्रौद्योगिकी	5	सी.आई.एफ.टी., कोचीन

2.	**पी.एच.डी.**		
	* मात्स्यिकी श्रोत प्रबंध	5	के.म.शि.सं., मुंबई
	* अन्तर्स्थलीय जलीय संवर्धन	5	के.म.शि.सं., मुंबई
	* समुद्री संवर्धन	5	सी.एम.एफ.आर.आई., कोचीन
3.	**प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम**		
	अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी विकास एवम् प्रशासन	50	के.म.शि.सं., कलकत्ता

इस संस्थान का मुख्यालय मुंबई के वरसोवा गांव के समीप स्थित है। इस संस्थान के पाँच उपकेन्द्र कलकत्ता, लखनऊ, काकिनाडा, रोहतक व पवारखेड़ा में कार्यरत है। इस संस्थान से अब तक 4045 लोग प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं, जिनमें से 100 छात्र एशियाई-अफ्रिकी देशों से थे। (तालिका - 4)

(तालिका 4)

के.म.शि.सं. द्वारा संचालित मानव संसाधन विकास (1961 से 1997 तक)

	शैक्षणिक कार्यक्रम	कुल उत्तीर्ण उम्मीदवार
1.	पी.एच.डी.	19
2.	एम.एस.सी. /एम.एफ.एस.सी.	212
3.	डी.एफ.एस.सी.	1016
4.	प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम	2798
	कुल	**4045**

पांचवे दीक्षान्त समारोह में पदक देते हुए तत्कालीन माननीय कृषि मंत्री श्री नीतीश कुमार

मिनिकॉय की जीवनशैली के कुछ पहलू

ए.के.वी. नासर एवं **चंद्रकांत तायडे**
केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान का विशाखपट्टनम क्षेत्रीय केंद्र, आध्रा प्रदेश

मिनिकॉय की सामाजिक जीवनशैली का आपको सबसे महत्वपूर्ण पहलू दिखाई देगा वह है कडा अनुशासन तथा परिवारों के बीच आपसी आत्मीयता। मिनिकॉय के दस गाँवों के पुरुष, महिला तथा बच्चों के मुखिया तथा उपमुखिया का चुनाव अलग रूप से होता है। मुखिया के शब्द को यहाँ के लोग बहुत मानते हैं और उसके निर्णय का गाँव के सभी लोग आदर करते है। इसके बदले में सारे गाँव के परिवारों की देखभाल तथा रोजमर्रे की परेशानियों को मुखिया देखता है। गाँव की सभी परेशानियों को मुखिया जानता है। यहाँ के सारे लोग (सामान्यतः पुरुष) मछुआरे हैं। और इस कारण वह ज्यादातर समय घर से दूर रहते हैं। इन मछुआरों के घर की सभी जिम्मेदारियाँ मुखिया पर होती हैं।

यहाँ के शादी के रस्मोरिवाज भी बडे अलग हैं। पूरे गाँव के लोग शादी की तैयारी में जुट जाते हैं। घर के सभी काम बडे शिष्टबद्ध तरीके से होता है। सामान्य तौर पर बुजुर्ग लोग ही सूचनायें देते हैं तथा वयस्क और बच्चे उसका कडाई से पालन करते हैं। गाँव की सभी तरुण लडकियाँ दुलहन जैसे कपडे पहनकर पत्थर पर मसाला पीसने की रस्म निभाती हैं। मसाला पीसने वाला पत्थर यह लडकियाँ अपने अपने घर से लाती हैं। इसके अलावा जहाज से प्रवासियों को लाना और पेड काटना जैसे काम सभी गाँव के लोग मिलकर करते हैं। इस तरह की तैयारियों के बीच बहुत कम मौज मजा होती है।

मिनिकॉय के ज्यादातर लोग इस्लाम धर्म के हैं इस वजह से आम तौर पर माँ के नाम का घर सबसे बडी बेटी के नाम पर हो जाता है। सभी लडकियाँ एक ही घर में रहती हैं और लडके सिर्फ नाममात्र के लिए घर के सदस्य होते हैं।

दुलहे के रिश्तेदार तथा दोस्त उसके घर आते हुए

लडकी अपने सुसराल कभी कभी जाती है। सामान्यतः पति सायंकाल के समय आकर रात भर रह जाता है। तथा दूसरे दिन निकल जाता है। दोपहर से पत्नी कुछ मसाला मछली की सब्जी बनाती है और उसे अपने साथ पति के घर के लिए ले जाती है। पति के घर आकर वह कुछ घंटे अपनी सास, ननद और बाकी लोगों के साथ रह कर अपने घर वापिस आ जाती है। मिनीकॉय की जीवन शैली का और एक विचित्र पहलू है कि बुजुर्गों के प्रति अनादर। बुजुर्ग चाहे वह स्त्री हो या पुरुष उसे घर की रोजमर्रा की चीजों में हाथ बंटाना ही पडता है। चाहे वह कितना भी बूढा हो, आराम करने की सहुलियत किसी को नहीं है। सामान्यतः यहाँ पर बुजुर्ग लोग अपने नाती पोतों को स्कूल पहुंचाते हैं तथा दुकान से मछली तथा आवश्यक चीजें लाते हैं। मृत्यु जीवन का एक अभिन्न सत्य है और उस सत्य को यहाँ के लोग दृढतापूर्वक लेते हैं। यहाँ ज्यादातर मुस्लिम धर्म के लोग हैं इसलिए मौत के बाद मुर्दे को दफनाया जाता है और उस विधि को मौत के एकाद घंटे में ही पूरा कर लिया जाता है।

मौत अगर रात को हो जाती है तो रात के ही रात मुर्दे को दफनाया जाता है। ज्यादा देर तक यहाँ के लोग मौत का दुख नहीं मनाते हैं और कभी कभी आपको पता तक नहीं चलेगा कि इस घर के किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई। ज्यादातर मिनिकॉय के लोग बहुत कम खाना खाते हैं तथा खाने के अलावा मिठाई तथा नमकीन को बडे चाव से खाया जाता है। मछली यहाँ के लोगों के खाने का एक अभिन्न अंग है और किसी न किसी प्रकार से रोज के खाने में मछली का होना अनिवार्य है।

काली चाय (बिना दूध के) सारा दिन लोग पीते हैं। इसके अलावा तंबाकू के बिना सादा पान खाने के भी यहाँ के लोग शौकीन है। इस प्रकार का शौक सिर्फ बुजुर्गों में ही है ऐसा नहीं है। यहाँ के बच्चे भी उबली हुई सुपारी का सेवन करते हैं। धूम्रपान का शौक वयस्क तथा बुजुर्गों में है लेकिन साफ सफाई के मामले में यहाँ के लोग काफी सजग है।

खाना खाने के लिए इन लोगों को बहुत कम समय लगता है। घर में जो भी बना है, तुरंत सभी लोग आपस में बांट के खा लेते हैं।

सामान्यतः ईद यहाँ का सबसे बडा त्यौहार है। ईद के दिन पूरे गाँव के लिए एक ही खाना दो मस्जिदों में बनाया जाता है। सभी गाँव के लोग मिलके ईद की पहली रात को सारा खाना बना लेते हैं तथा ईद के दिन चार-चार लोगों का एक समूह बनाकर खाना खाया जाता है। खाने के मामले में यहाँ पर ज्यादातर सभ्यता का पालन नहीं किया जाता और जिसको जो पसंद है और जैसा चाहे उस प्रकार खाना खाने की सभी को सहूलियत है।

अगर आपको किसी के यहाँ का शादी में खाना खाने का न्योता है तो आपके लिए वहाँ कोई इंतजार करता हुआ नहीं दिखाई देगा आपको आने के बाद अपने आप खाना खाके वापस जाना होता है।

नवजात शिशु के पैदा होते ही उसी दिन उसका नाम रखा जाता है और नाम सामान्यतः सप्ताह के दिनों के आधार पर रखा जाता है। इस प्रकार से लडकों के नाम सात प्रकार के हैं, मोहम्मद, हसन, हुसैन, इस्माईल, इब्राहिम, अलि, एवं मुस्त। यहाँ 2 से 3 साल के बच्चे अपने लकडी के खिलौनों के साथ बडे बच्चों के बराबर तैरने पानी में उतर जाते हैं। इस प्रकार का दृश्य यहाँ पर बहुत सामान्य तौर पर दिखाई पडता है यहाँ पर फैले विशाल समुद्र के साथ यहाँ के लोग बहुत आसानी से घुलमिल गये हैं। यहाँ पर बच्चे अपना काफी समय मछली पकडने तथा समुद्र में तैरने में गुजार देते हैं और इस वजह से यहाँ के बच्चे पढाई में ज्यादा रुचि न होने से शिक्षा के क्षेत्र में पिछडे हैं। यहाँ ज्यादातर बच्चे स्कूल छोड चुके हैं।

गणतंत्र दिवस तथा स्वतंत्रता दिवस पूरे मिनिकॉय में हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। यहाँ का माहोल पूरे भारत में भी नहीं दिखाई देगा। इन महोत्सवों की तैयारी उप जिलाधिकारी के नेतृत्व में एक महीना पहले से शुरु हो जाती है। झंडा फहराने के बाद यहाँ पर सारी प्रतियोगिताएँ शुरू हो जाती हैं। उसमें रस्सी खींच, तैराकी तथा बोट प्रतियोगिताएँ शामिल हैं। उस दिन शाम को फुटबॉल प्रतियोगिता का फाइनल मैच होता है। इस मैच को देखने के लिए पूरे उल्लास से लोग हिस्सा लेते हैं। उसके बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम का दोर रात तक चलता है दो तीन दिनों तक ये कार्यक्रम चलते रहते हैं।

यहाँ मिनिकाय के लोग बहुत चिंतामुक्त जीवन व्यतीत करते हैं। पैसा बचाने की चाह इन लोगों में नहीं है। बहुत संख्या के पुरुष विदेशी पोतों में काम करने वाले हैं। इन नाविक कर्मियों को लोग दुलार से सीमेन पुकारते हैं। ये सीमेन जो अपने साथ लाखों रुपये लाते हैं उनके अपने जहाज पर सैर ले जाने के लिए लोगों से पैसा लेते हैं। यहाँ के लोगों के पैसों का मुख्य स्रोत नाविक कर्मी बनने से आने वाला पैसा है, इसके अलावा यहाँ के लोग टूना मछली और नारियल को बेचने में खूब मुनाफा कमाते हैं। मास्मिन नामक सूखी टूना मछली अपने स्वाद तथा स्वास्थ्य के लिए

बहुत प्रसिद्ध है। ज्यादातर काम में महिलाओं का योगदान पुरुष वर्ग से ज्यादा है। बचाये हुए रुपयों को मिनिकॉय के लोग अच्छी पिकनिक, मिनिकॉय के दक्षिण भाग में मनाने में खर्च कर देते हैं या कोचीन चले जाते है। मिनिकॉय के बहुत सारे लोगों ने अपने लिए कोचीन में जायदाद ले रखी है और अच्छा खासा समय ये लोग कोचीन में बिताते हैं।

नवजात शिशु का जन्म तथा बीमारियों के इलाज के लिए भी लोग कोचीन जाना ज्यादा पसंद करते हैं। यह भी यहाँ के बहुत सारे लोगों की छुट्टी मनाने का एक तरीका है। यहाँ के लोग मलयालम फिल्मों से ज्यादा हिंदी फिल्मे पसंद करते हैं तथा कैसेट्स वैगरह मुंबई से खरीदे जाते हैं। लडके तथा लड़कियाँ नृत्य सीखने में बहुत उत्सुक है तथा सीखने के बाद प्रजातंत्र दिवस या स्वातंत्रता दिवस के दौरान कार्यक्रम में हिस्सा लेते हैं। मिनिकॉय के लोग अपनी अलग पहचान बनाये रखने में विश्वास रखते हैं। यहाँ के लोग खुद द्वीपवासी (islander) होकर भी दूसरे द्वीप (island) के लोगों को islanders कहकर संबोधित करते है। वैसे तो ये लोग बाकी लोगों से घुलमिल जाते हैं किंतु आपस में थोड़ी दूरियाँ रह ही जाती है। मिनिकॉय में दूसरी जाति के लोग जैसे यूरोपियन तथा आफ्रिका के लोग भी दिखाई पडते हैं। जो लोग सीमेन है वे लोग स्पैनिश, रूसी, फ्रेंच भाषाएँ बोलना जानते हैं।

मत्स्यापालन के संबंध में भी मिनिकॉय के लोगों का अनुशासन दिखाई पडता है। यहाँ जब भी कोई परेशानी का सामना होता है तो तुरंत एक मिटिंग बुलाई जाती है और जो भी निर्णय होता है उसको सब लोग मानते हैं। मानसुन मौसम के खत्म होते ही सभी लोग लैगूण (Lagoon) की साफ सफाई तथा दिशा दिखाने वाले यंत्रों की मरम्मत करने में जुट जाते हैं।

यहाँ के लोग नई विचारधारा को मानने वाले हैं तथा कानून के प्रति जागरूक हैं। अफसरों के प्रति बहुत अच्छा बर्ताव रखते हैं और कडी मेहनत और अनुशासन इन लोगों की पहचान है। •

भारत की उपास्थिमीन मात्स्यिकी - एक मूल्यांकन

सी एम एफ आर आइ विशेष प्रकाशन सं. 71, फरवरी, 2002. आइ एस एस एन : 0972-2351

एस.जी.राजे, ग्रेस मात्यू, के.के. जोशी, रेखा जे. नायर, जी. मोहनराज, एम. श्रीनाथ, एस. गोमती और एन. रुद्रमूर्ति।

विदोहित समुद्री जीव संपदाओं के अनुसंधान का एक नोडल संस्थान होते हुए सी एम एफ आर आइ ने उपास्थिमीनों के विभिन्न पहलुओं पर सम्मिलित अनुसंधान की आवश्यकता समझकर इन सबके प्राथमिक आंकडे इकट्ठे किए है जो सरकार तथा अन्य इच्छुक ग्रुपों के लिए सहायक हो जाएंगे । ग्रंथसूची भाग में भारत के चारों ओर के समुद्र की उपास्थिमीन मात्स्यिकी के वर्गीकरण विज्ञान, जीवविज्ञान, वितरण आदि का विवरण दिया गया है ।

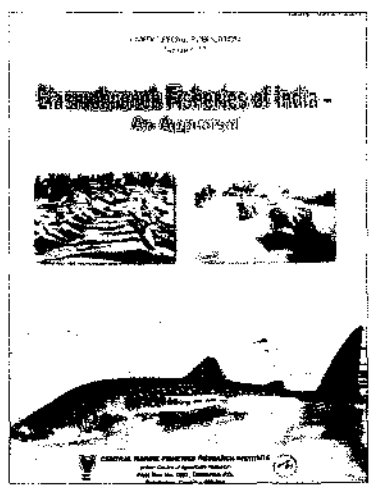

यह पुस्तक 1/4 क्राउन आकार बहुरंगों कागज़, 76 पृष्ठों, IV प्लेटों की है जिसका मूल्य 70/- रुपए है।

राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केंद्र-एक परिचय

के.के. वास एवं अमित कुमार जोशी
राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केंद्र, भीमताल, उत्तर प्रदेश

संक्षिप्त इतिहास

वर्ष 1987 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधीन राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई जिसका अस्थायी मुख्यालय उत्तरांचल के कुमायूं क्षेत्र में हल्द्वानी नामक स्थान पर बनाया गया जिसे मई-जून 1997 में भीमताल (जिला-नैनीताल) स्थानान्तरित कर दिया गया। आशा है कि इस पंचवर्षीय योजना के अन्त तक यह राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केंद्र, भीमताल में अपना प्रशासनिक भवन, अतिथि गृह, वैज्ञानिक प्रयोशालाएं, पुस्तकालय आदि भवनों के निर्माण कार्य पूरा करने के साथ ही अपना स्थायी मुख्यालय स्थापित करने में सक्षम हो सकेगा।

मात्स्यिकी विज्ञान के उभरते स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए देश के अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी संवर्ग का समपूर्ण शोध वरीयतानुसार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अन्तर्गत पुनर्गठित किया गया। मुख्य अन्तर्स्थलीय अनुसंधान संस्थान को चार संवर्गों/संस्थानों/राष्ट्रीय केन्द्र में विभाजित किया गया। संस्थानीय निजी परिसर के अभाव में शीतजल मात्स्यिकी के क्षेत्र में तकनीकी विकास का कार्य प्रभावित हुआ है।

अपने प्रारम्भ से अब तक राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र, देश का एकमात्र सुविधा केन्द्र के रूप में उभर रहा है जहां देश एवं विदेश के शीतजल मत्स्य प्रजातियों के संवर्धन एवं प्रग्रहण मात्स्यिकी के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। अपनी स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र, सीमित मानव शक्ति तथा अपर्याप्त परिसरीय सुविधा के बावजूद भी शीतजल मात्स्यिकी संसाधन

सुनहरी माहसीर, टोर प्यूटिटोरा का स्ट्रिपिंग (Stripping)

समुचित मूल्यांकन तथा उचित तकनीकों के विकास के द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों की महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के प्रसार के लिए पर्याप्त योगदान दिया है।

संस्थान का लक्ष्य/अधिदेश

शीतजल मात्स्यिकी संवर्ग के बदलते हुए मांग के अनुसार राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र के अधिदेश में समय समय पर आवश्यक बदलाव किए गए हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध ठंडे पानी के स्रोतों में मछलियों के पालन पोषण, संग्रहण, संवर्धन एवं संरक्षण हेतु अनुसंधान द्वारा मात्स्यिकी विकास को गति देकर इन क्षेत्रों की आर्थिक दशा में सुधार लाना इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य है। संस्थान की भावी योजना (विजन-2002) के अधीन राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी संवर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख लक्ष्यों को निर्धारित किया गया है:-

- पर्वतीय क्षेत्रों में ठंडे पानी के स्रोतों का आकलन करना।

- इनके संरक्षण व प्रबन्धन के लिए नीति विकसित करना।
- देशज एवं विदेशी मछलियों के पालन पोषण की तकनीक पर अनुसंधान करना।
- वातावरण में होने वाले परिवर्तन तथा जलीय जीव विविधता पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- शीतजल मत्स्य पालन के क्षेत्र में विकसित तकनीकी को प्रशिक्षण, शिक्षा व प्रसार माध्यमों द्वारा इच्छुक विभागों, व्यक्तियों व संस्थानों को हस्तांतरित करना।

संगठन स्वरूप

उपरोक्त अधिदेशों की पूर्ति हेतु संस्थान मुख्यतः त्रिस्तरीय सम्पर्क द्वारा कार्यरत है, जिनमें 9 सेल/इकाई, 1 क्षेत्रीय केन्द्र, 1 जल प्रवाही पोषणशाला सुविधा तथा 1 प्रयोगिक प्रक्षेत्र सुविधा सम्मिलित है। यहां के निदेशक संस्थान के प्रमुख हैं जिनके द्वारा अनुसंधान प्रबन्धन का कार्य होता है। निदेशक की अध्यक्षता में प्रबन्ध समिति संस्थान के सर्वांगीण प्रबन्ध दायित्व का निर्वहन करता है। संस्थान के शोध एवं प्रसार कार्यों के प्रति विशिष्ट टिप्पणी, स्टाफ रिसर्च काउन्सिल तथा रिसर्च एडवाइजरी कमेटी द्वारा किया जाता है। वर्तमान में संस्थान में 10 वैज्ञानिक, 11 तकनीकी कर्मचारी तथा 10 प्रशासनिक एवं 17 सहायक कर्मचारी हैं।

संस्थान की प्रमुख उपलब्धियां

1. मत्स्य पालन

अ) *विदेशी ट्राउट*

ब्राउन ट्राउट *सात्मो ट्रूटा फेरियो* के संचयन योग्य अंगुलिकाओं के उत्पादन के लिए समुचित हैचरी प्रबन्ध तकनीकी का मानकीकरण किया गया है जिससे कश्मीर के प्राकृतिक जल स्रोतों तथा प्रक्षेत्रों में संचयन किया जा सके। प्रथम बार ब्राउन ट्राउट के जीरे से खाने योग्य बड़ी आकार की मछली नियन्त्रित स्थिति में मानकीकृत प्रबन्धन तकनीकी द्वारा विकसित किया गया।

कृत्रिम खुराक विकसत किए गए हैं जिससे प्रयोगिक प्रक्षेत्र में ट्राउट मछली की विभिन्न अवस्थाओं को बढ़ाया जा सके। *सात्मो ट्रूटा फेरियो* तथा *आन्कोरिंकस माइकिस* की दो मत्स्य प्रजातियों पर विकसित खुराक के प्रयोगिक परीक्षण किए गए जिनसे एफ.सी.आर. 1.4 से 2.1 तक देखी गई जो स्थानीय भोजन की अपेक्षा अत्यधिक अच्छा था। संस्थान

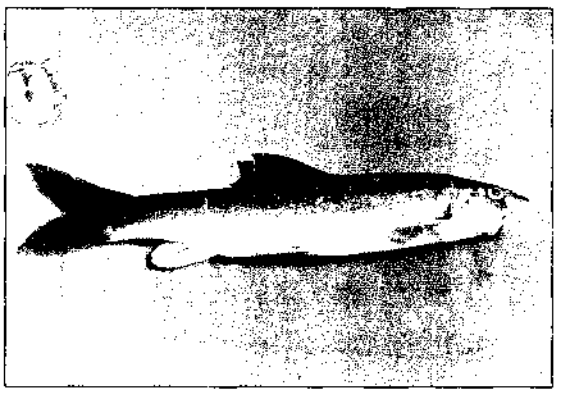

स्नो ट्राऊट, शाइजोथोरैक्स रिचार्डसोनी

ने व्हिलिंग जैसी बीमारी से मर रही वयस्क ट्राउट की रोकथाम के लिए भी समुचित तकनीकी का विकास किया जिसे उन मछलियों की पोषण सम्बन्धी विकास समझा गया। यह समस्या कश्मीर के मत्स्य प्रक्षेत्रों में अत्यधिक देखी गई।

रेन्बो ट्राउट *आनकेरिंकस माइकिस* के पालन तकनीकी का मानकीकरण कुमायूं के पर्वतीय क्षेत्रों में किया गया तथा उनकी खुराक विकास का मानकीकरण केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान के सहयोग से अत्यधिक उत्पादन बढ़ाने हेतु किया जा रहा है।

आ) *विदेशी कार्प मछलियां*

एकजातीय पालन

ग्रामीण अंचल में मत्स्य पालन विकसित करने हेतु संस्थान ने कश्मीर में कामन कार्प *साइप्रिनस कार्पिओ* मछली के पालन का प्रदर्शन किया जिससे 1.5 से 2.0 टन प्रति हे.

प्रति वर्ष तक का उत्पादन किया गया। ऐसी बढ़ायी गई उत्पादकता परिपूरक आहार के साथ साथ रसोई अवशेष के प्रयोग द्वारा प्राप्त की गई।

बहुजातीय पालन

कुमायूं हिमालय में परीक्षणों द्वारा यह विदित हो गया है कि कामन कार्प, सिल्वर कार्प तथा ग्रास कार्प जैसी तीन विदेशी कार्प प्रजातियों का मिश्रित पालन, निचले तथा मध्य हिमालय क्षेत्रों में 1300 से 1700 मी. समुद्री सतह से ऊपर उपयुक्त है। यहां का जलीय ताप 5 से 26 डिग्री सेन्टीग्रेड तक होता है। ऐसे मिश्रित मत्स्य पालन तकनीकी पद्धति के मानकीकरण में संग्रह दर, उचित मत्स्य प्रजाति का अनुपात, समुचित खुराक तथा उचित उर्वरक का विवेकपूर्ण प्रयोग द्वारा 300 से 400 ग्रा. तक की मछली के एक ही काल अर्थात अप्रैल से अक्टूबर की अवधि में प्राप्त की जा सकी है जिससे हे. प्रतिवर्ष 2.3 टन तक की उपज प्राप्त की जा सकती है। इस तकनीक का प्रसार इन पहाड़ी क्षेत्रों के कृषकों तक किया जा रहा है।

ई) *देशज स्नोट्राउट*

वर्ष 1980 की अवधि में *शाइजोथोरैक्थीन नाइगर, एस. माइक्रोपोगान* एवं *शाइजोथोरैक्स रिचार्डसोनी* जैसी विभिन्न प्रजातियों के परिपक्व प्रजनकों को कश्मीर के प्राकृतिक स्रोतों से पकड़ कर उनका कृत्रिम प्रजनन द्वारा जीरा उत्पादन में सफलता प्राप्त की गई। इन प्रजातियों में जीरा अवस्था तक 30 से 80 प्रतिशत उत्तरजीविता पायी गई। तदुपरान्त 90 के उत्तर दशक में इसी प्रकार की सफलता कुमायूं में *शाइजोथेरैक्स रिचार्डसोनी* के प्रजनन में मिली। परन्तु मत्स्य प्रक्षेत्र पर उपज की गई प्रजनकों का वर्ष 1999 में रा.शी.ज.मा.अनु. केन्द्र के छिरापानी प्रक्षेत्र पर प्रजनन कराकर आशातीत सफलता प्राप्त की गई। ऐसे प्रयोगों द्वारा इस महत्वपूर्ण प्रजाति का नियन्त्रित परिस्थितियों में जीरा उत्पादन की सफलता पूर्वक प्रयोगिक उपलब्धियों से जीरा उत्पादन की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त हो गया है।

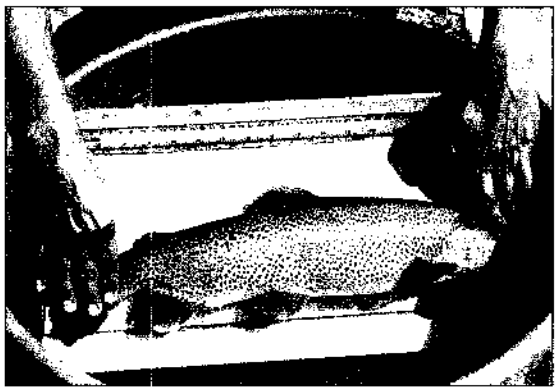

रेनबो ट्राऊट

ई) *देशज सुनहरी माहसीर*

विशिष्ट प्रकार की स्फुटनशाला निर्मित करके उसमें नियन्त्रित परिस्थितियों के द्वारा सुनहरी माहसीर *टॉर प्युटिटोरा* मछली के कृत्रिम बीज उत्पादन में संस्थान ने सफलता पायी है। इसमें परिपक्व प्रजनकों से अण्डे प्राप्त करने से लेकर निषेचन, हैचिंग तथा विकसित जीरा के भरण पोषण तक की कुछ तकनीकों का समावेश कर इनका मानकीकरण किया गया है। विभिन्न अवस्थाओं की उत्तरजीवितता इसमें 70-80 प्रतिशत तक पायी गयी है।

रा.शी.ज मा.अनु. केन्द्र भीमताल द्वारा तैयार की गई जल प्रवाही पोषणशाला की क्षमता 0.25 मिलियन निषेचित अण्डे, 0.2 मिलियन तैरते पोने के पोषण तथा 0.1-1.5 मिलियन विकसित जीरा के उत्पादन की है। यह बीज

कुमायूँ की एक झील में मत्स्य अनुसंधान गतिविधि

उत्पादन की क्षमता आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है। जल प्रवाही पोषणशाला द्वारा परम्परागत विधि की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक उत्तरजीवितता पायी गई है। इस पद्धति से अत्यधिक मात्रा में बीज उत्पादन सहायक सिद्ध हुआ है।

2. जलीय संसाधन एवं मात्स्यिकी प्रबन्धन

अ) *पारिस्थितिकी प्रणाली अध्ययन*

कश्मीर में हिमालय जल स्रोतों का वर्गीकरण उनकी गुणवत्ता एवं नितल जीव समूह की संरचना के आधार पर प्रस्तावित है। इससे वांछित मत्स्य समूह के रखाव को जल स्रोत के उत्पादन क्षमता से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार कुमायूं हिमालय के जल स्रोत का भी मत्स्य समूह रखाव की क्षमता का आकलन किया गया जिससे वहां के संरक्षण एवं मत्स्य प्रजाति के संग्रहण द्वारा उनकी क्षमता के अनुरूप बढ़ाए जाने में मदद मिल सके।

केन्द्रीय हिमालयी झीलों का भी उनकी उत्पादन क्षमता के लिए अध्ययन किया गया है। उनके पारिस्थितिकीय आंकड़ों के आधार पर उनके मात्स्यिकी विकास की उपयुक्त नीति का प्रस्ताव भी किया गया है।

प्रदूषण समस्याएं, जैविक सूचकों की पहचान एवं कश्मीर के प्राकृतिक जलमग्न स्थलों के उर्जा प्रत्यावर्तन का पता लगाया गया। इन प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इन पारिस्थितिकी इकाईयों के विवेकपूर्ण मात्स्यिकी दोहन की नीति का विकास किया गया। कम ताप के जलमग्न भूमि में उर्जा प्रत्यारोपण की जानकारी के आधार पर अनुप्रयुक्त इट्राइटल उर्जा को उचित प्रजाति सम्मिश्रण द्वारा मत्स्य उत्पादन में परिवर्तित करने की विवेकपूर्ण नीति को विकसित किया गया।

उँचाई वाली ग्लेशियर झीलों (3000 मी. समुद्र तल के ऊपर की उंचाई) की सर्वप्रथम विस्तृत जानकारी प्राप्त की गई ताकि कामन कार्प *साइप्रिनस कार्पिओ* तथा स्नो ट्राउट *साइजोथोरासिड* के बीज का स्थानीय झीलों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

आ) *मत्स्य समूह अध्ययन*

महत्वपूर्ण कश्मीर घाटी की साधारण क्रिल सेंसस को मत्स्य निकासी दबाव एवं उनकी उत्पादन क्षमता के आकलन के लिए लिया गया। यह अध्ययन सतत निकासी के आधार पर आखेट के लिए मत्स्य निकासी सीमा निर्धारण के लिए श्रेयस्कर था।

माहसीर बीज एकत्रीकरण स्थानों की क्षमतानुरूप पहचान की गई तथा जम्मू और कश्मीर क्षेत्र में उनकी संख्या मालूम की गई क्षमतानुरूप ऐसे स्थान झझरकोटली, अन्जी, बेहानी, दुथर एवं उझ में पाए गए। कश्मीर की झीलों में विदेशी मत्स्य प्रवेश के संघात का अध्ययन किया गया जिससे पता चला कि कामन कार्प का चारा के लिए हस्तक्षेप, अत्यधिक अण्डजनन, झील में ही अच्छी अण्डजनन क्रियाशीलता, निषेचन की अच्छी दर एवं ताप सेवन की अल्प अवधि जैसे कारणों से झील क्षेत्रों में देशज शाइजोथोरैसिड में गिरावट आयी है। विदेशी कामन कार्प के संग्रहण से जहां कुल मत्स्य उत्पादन में मामूली बढ़ोत्तरी हुयी है वहीं *साइप्रिन्स कार्पिओ* से झीलों के स्नोट्राउट की पकड़ में गिरावट आयी है।

स्नोट्राउट के साधारण जैविक एवं प्रजनन विज्ञान का महत्वपूर्ण डाटाबेस विभिन्न जलीय जैव ईकाईयों जैसे-कश्मीर के नदी नालों तथा झीलों से तैयार किया गया। विभिन्न स्नोट्राउट प्रजातियों के प्रजनन विस्थापन उनके प्रजनन स्थलों की पहचान आदि पर भी विभिन्न आंकड़े एकत्र किए गए। *शाइजोथोरैक्थीज नाइगर* के प्रजनन स्थल को डल झील में सर्वप्रथम चिन्हित किया गया जिससे यह सिद्ध होता है कि शाइजोथोरासिड के इस प्रजाति में प्रजनन विस्थापन की आवश्यकता नहीं होती। स्नोट्राउट के प्राकृतिक बीज का स्थानीय जल स्रोतों में विनाश को भी नापा गया है।

3. प्रसार एवं विस्तार

संस्थान का प्रसार अनुभाग अभी ढांचा स्वरूप है

फिर भी इसने तकनीकी हस्तांतरण कार्यक्रमों, किसानों से सम्बन्धित कार्यक्रमों, प्रदर्शनियों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा मत्स्य बीज वितरण, किसानों को जल संवर्धन का समुचित मार्गदर्शन एवं उत्तरांचल के कुमायूं क्षेत्र के अन्य ग्राहकों को अपनी सुविधा उपलब्ध कराता है।

4. वर्तमान में चल रही परियोजनाएं

वर्तमान में संस्थान द्वारा उत्तरांचल राज्य में संवर्धन एवं प्रग्रहण मात्स्यिकी दोनों को सम्बोधित करते हुए निम्नलिखित अनुसंधान परियोजनाएं चलायी जा रही है:-

- हिमालय/उप-हिमालय की झीलों में पारिस्थितिकी परिरूपण एवं मात्स्यिकी अभिवृद्धि
- भौगोलिक सूचना प्रणाली द्वारा जलीय संसाधन एवं जैव विविधता की आधारभूत सूचनाओं का विकास
- लुप्तप्राय एवं लुप्तोन्मुख मत्स्य प्रजातियों का संरक्षण एवं संवर्धन।
- देशी प्रजातियों पर आधारभूत उँचे क्षेत्रों की मत्स्य प्रजातियों में भोजन एवं पोषण का विकास
- प्रायोगिक स्तर पर परीक्षण तथा प्रदर्शन कार्यक्रमों के द्वारा तकनीकों को ग्राहकों तक पहुंचाना

5. प्रदत्त सुविधाएं

राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र ने समयान्तर में शीतजल मात्स्यिकी के विभिन्न क्षेत्रों में महारथ हासिल की है तद्नुसार वह निम्नलिखित सेवाएं विशिष्ट ग्राहकों को उपलब्ध कराने में सक्षम है -

- ट्राउट मत्स्य प्रक्षेत्र के लिए प्रारूप का निर्माण
- पर्वतीय क्षेत्रों की जल प्रवाही प्रणाली में कार्प की खेती के लिए तालाबों के प्रारूपों का निर्माण
- सुनहरी माहसीर मछली के लिए हैचरी प्रणाली के प्रारूप का निर्माण
- शीतजलीय मत्स्य पालन में पानी एवं मिट्टी के गुणवत्ता का प्रबन्धन
- पर्वतीय क्षेत्रों में मात्स्यिकी विकास के लिए हिमालयन माहसीर एवं पालने योग्य विदेशी कार्प मछली के बीज की आपूर्ति
- मत्स्य विकास एवं वातापरणीय संघात आकलन पर सम्भावित रिपोर्ट निर्माण की सुविधा
- अनुसंधान वैज्ञानिकों/राज्य कर्मियों/तकनीकी वर्ग/किसानों के लिए संस्थान के बाहर तथा भीतर प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम
- स्वयंसेवी संस्थाओं/राज्य कर्मियों/विश्व विद्यालय छात्रों एवं अन्य संस्थाओं के लिए प्रदर्शन प्रशिक्षण आयोजित करना
- पर्वतीय क्षेत्रों में जल संसाधन प्रबन्धन तथा जल संवर्धन पर परामर्श तथा संविदाएं ●

भारत के तटीय जलकृषि खेत

भारत के समुद्र तटों में जलकृषि करनेवाला 1,250 खेत है। इन में 1,051 नियंत्रित मेखला (CRZ) में है जिसका क्षेत्र 1,936 हेक्टयर है। नियंत्रित मेखला के बाहर स्थापित 199 खेतों का क्षेत्र फल 1,048 हेक्टयर है। नियंत्रित मेखला में स्थापित 229 खेत समुद्र तट पर और 791 संकरी खाडियों पर आधारित है। बाकी जो है पुलिकाट झील में है। भारत के जलकृषि प्राधिकरण (ए.ए. आइ) ने अब तक 2,205 लाइसेंस दिए है। लाइसेंसों का राज्यावार वितरण इस प्रकार है। पश्चिम बंगाल (5737); उडीसा (530); आंध्र प्रदेश (222); तमिलनाडु (87); पोन्डिच्चेरी (6); गुजरात (187); महाराष्ट्र (98); गोवा (48); कर्नाटक (127) और केरल (327)

- हिंदु से साभार

केन्द्रीय खारापानी जलजन्तु पालन संस्थान की शोध उपलब्धियाँ

मात्यू एब्रहाम, एस.एम. पिल्लै एवं बी.पी. गुप्ता
केन्द्रीय खारापानी जलजन्तु पालन संस्थान, राजा अण्णामलैपुरम, ता. नाडु.

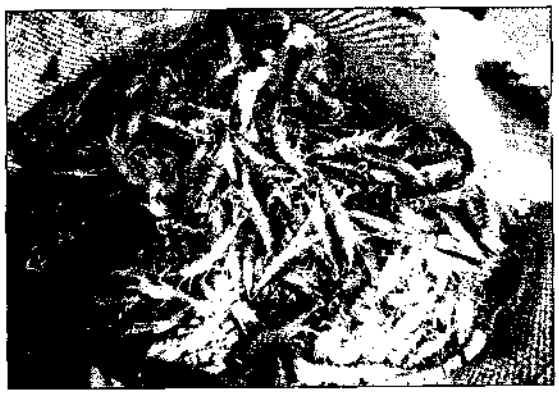

संग्रहित मोनोडोन झींगे

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (भाकृअनुप) द्वारा अप्रैल, 1987 में केन्द्रीय खारापानी जलजन्तु पालन संस्थान (केखाजपासं.) की स्थापाना की गई। संस्थान का मुख्यालय चेन्नई में है तथा इसका प्रायोगिक केन्द्र चेन्नई से 30 कि.मी. दूर मुत्तुकाडु में स्थित है। इसके दो शोध केन्द्र क्रमशः काकद्वीप (पश्चिम बंगाल) व पुरी (उड़ीसा) में स्थित है।

संस्थान में स्वीकृत कर्मचारियों की संख्या कुल 209 (निदेशक-1, वैज्ञानिक-65, तकनीकि कर्मचारी-35, प्रशासनिक कर्मचारी-25 तथा सहायक कर्मचारी-83) है।

केखाजपासं. के लक्ष्य

- विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में खारेपानी में टिकाऊ व प्रभावशाली जलकृषि के विकास के लिए शोध का आयोजन करना।
- अधिक उत्पादकता के लिए पारिस्थितिनुकूल व किफ़ायती संवर्धन प्रौद्योगिकियों का विकास तथा उत्पादन व प्रबंधन में विभिन्न विषयों को लागू करते हुए मछली, कवच मछली व अन्य जल-जन्तुओं का उत्पादन करना
- खारेपानी जलजन्तु पालन कार्यों से संबंधित पर्यावरण, प्राकृतिक संपदाओं के प्रबंधन एवं समाजार्थिकी विकास के लिए सहायता प्रदान करना।
- प्रभावशाली डेटाबेस व सूचना प्रबंधन प्रणाली का विकास।
- मानव संसाधन विकास-कार्य करना व प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों के हस्तांतरण तथा
- परामर्श सेवाएँ प्रदान करना।

संस्थान में दो प्रभागों व चार अनुभागों के अन्तर्गत शोध कार्य हो रहे हैं।

क्रस्टेशियन संवर्धन प्रभाग

मत्स्य संवर्धन प्रभाग

पोषण, शरीर विज्ञान तथा रोग विज्ञान अनुभाग

आनुवंशिक व जीवप्रौद्योगिकी अनुभाग

जलकृषि अभियांत्रिकी व पर्यावरण अनुभाग

विस्तार आर्थिकी तथा सूचना अनुभाग

भारत में झींगा जलकृषि

भारत की तटरेखा 8118 कि.मी. लम्बी है, 2.02 मिलियन स्क्वायर कि.मी. एक्सटेंसिव एक्नॉमिक जोन है और विशाल एवं विविध भौगोलिक भू-भाग तथा विविध जलवायु संयुक्त रूप से अंतः स्थलीय व तटीय नम-प्रदेश

के आवास को परिवर्तित करने में योगदान प्रदान करते हैं। भारत में करीब 3.9 मिलियन हे. एस्टुअरिज़ (Estuaries) क्षेत्र तथा 3.5 मिलियन हे. खारापानी क्षेत्र है। इसमें से 1.2 मिलियन हे. तटीय क्षेत्र खारेपानी में जलकृषि के विकासार्थ उपयुक्त पाया गया। हमारे देश में झींगा पालन क्षेत्र मुख्यत: पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पांडिचेरी, केरल, गोआ, महाराष्ट्र तथा गुजरात के तटीय प्रदेशों में स्थित है। इसके अतिरिक्त हाल ही में हमारे देश के 8.7 मिलियन हे. लवण प्रभावित क्षेत्रों विशषकर अंतस्थलीय राज्यों जैसे राजस्थान, हरियाणा, पंजाब व उत्तर प्रदेश का जलकृषि के लिए उपयोग प्रारंभ किया गया।

भारत को सन 1999 में प्रमुख जलकृषि झींगा उत्पादन देशों में 5 वां स्थान प्राप्त हुआ तथा इसने विश्व पालित झींगा उत्पादन में 8.59% योगदान प्रदान किया।

2000-2001 तक कुल 1,72,0 हे. क्षेत्र का झींगा कृषि के लिए उपयोग किया गया तथा 1,13,660 मैट्रिक टन झींगे का उत्पादन किया गया। इसका औसतन उत्पादन 658 कि.ग्रा./हे. रहा। हमारे देश में झींगा कृषि पर लघु कृषकों (91%<2 हे.) का प्रभुत्व रहा है जो रोज़गार वृद्धि में तथा ग्रामीण जनता को आय प्रदान करने में सहायक है। भारत से यू एस $1 बिलियन मूल्य का समुद्री आहार का निर्यात होता है, जो देश (1999-00) के कुल निर्यात में 3.14% तथा कृषीय निर्यात में 14.% का योगदान प्रदान करता है। 2000-01 में पालित झींगे के परिमाण का योगदान वजन से 58.89% तथा मूल्य से 86.38% रहा।

शोध विशिष्टताएं

केखाजपासं, ने देश में खारेपानी जलकृषि के विकास से संबंधित शोध व विकास कार्यक्रम में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। संस्थान की प्रमुख शोध उपलब्धियाँ निम्न प्रकार है :

1) **क्रस्टेशियन संवर्धन प्रभाग**

- पारंपरिक क्षेत्र मे केरल व पश्चिम बंगाल की झींगा कृषि पर अध्ययन किए गए। केरल व उड़ीसा का पारंपरिक झींगा कृषि की निगरानी रखी गई। केरल के पोक्कलि क्षेत्र में टाइगर झींगा पीनस मोनोडॉन के उन्नत पारंपरिक संवर्धन के प्रदर्शन किए गए तथा तीन महिनों में उत्पादन 235-1100 कि.ग्रा./हे. प्राप्त हुआ। काकद्वीप में ज्वार-भाटा आधारित तालाब में पी. मोनोडॉन के उन्नत पारंपरिक संवर्धन के लिए केखाजपासं द्वारा तैयार आहार दिया गया जिससे 100 दिनों में 1200 कि.ग्रा./हे. उत्पादन प्राप्त हुआ
- नेल्लूर आंध्र प्रदेश में केखाजपासं. के वैज्ञानिको के सहयोग से एम.पी.ई.डी.ए. द्वारा सर्वप्रथम कार्यान्वित अर्ध-गहन/गहन झींगा कृषि के प्रदर्शन में 5 टन/हे./फसल का उत्पादन हुआ।
- लघु व मध्यम कृषकों के लिए सफेद झींगा पी. इंडिकस के बीज उत्पादनार्थ सरल व लागत को प्रभावित करने वाला बैकयार्ड मत्स्यशाला प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किया गया। पी. मोनोडॉन की बंधक शावक संजाति के परिपक्वन के लिए एक प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किया गया। लघु पैमाने (2,5 तथा 10 मिलियन क्षमता) व बैकयार्ड मत्स्यशालाओं के लिए रूपरेखाएं भी विकसित की गई।
- ब्राइन झींगा के संवर्धन व सिस्ट के उत्पादन तथा झींगा मत्स्यशालाओं के लिए महत्वपूर्ण जीवित आहार आर्टिमियां के लिए प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किए गए। पी. मोनोडॉन के डिम्भक अभिपोषण में जीवित आहार को हटाकर आर्टिमिया फ्लेक आहार का सफलतापूर्वक उपयोग किया गया।
- पंक केकडा संवर्धन के लिए एक प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किया गया। पंक केकडा के बेरिड मादा *सैला ट्रांक्यूबरिका* व *एस सेरोटा* के बंधक शावक संजाति के विकास, प्रेरित परिपक्वन, प्रजनन तथा उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी उपार्जित की गई। *एस. ट्रांक्यूबरिका* का जीवन-चक्र बंधक परिस्थितियों में पूर्ण किया गया तथा सभी जोयल स्तरों का अर्थात् अंडे से लेकर मेगालोपा स्तर से होते हुए पोस्ट लार्वल इंस्टार स्तर (बेबी केकडा) का पालन किया गया।

2. मत्स्य संवर्धन प्रभाग

- एशियन सीबास, *लेट्स केलकरिफेर* के बंधक शावक संजाति के विकास, प्रजनन तथा बीज उत्पादन में देश को पहली बार महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त हुई। सीबास के बीज उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी को मानकीकृत किया गया। कृषकों के तालोबों में सीबास का सफलतापूर्वक पालन किया गया तथा F2 जेनरेशन बीजों का उत्पादन किया गया।
- ग्रे मुल्लेट्स, *मुगिल सिफालस* एवं *लिज़ा मेक्रोलेपिस* की बंधक शावक संजाति का विकास व पोषण किया गया। *एम. सिफालस* व *लिज़ा मेक्रोलेपिस* का प्रेरित प्रजनन किया गया। *एम. सिफालस* में आठ दिनों तक स्फुटनिकाओं का तथा *एल. मेक्रोलोपिस* में अंगुलिका तक अभिपोषण किया गया।
- बंधक परिस्थितियों में पर्लस्पॉट, *इट्रोप्लस सुराटेंसिस* में वर्षभर नियमित रूप से प्रजनन तथा बीज उत्पादन के लिए एक प्रौद्योगिकी पेकेज तैयार किया गया।
- ग्रुपर *इपिनेफेलस टोविना* की बंधक शावक संजाति परिपक्व हुई।
- ग्रे मुल्लेट्स, एम. सेफालस एवं एल. मेक्रोलेपिस के शुक्राणुओं के शीतलीकरण के लिए सरल तकनीकी विकसित की गई।
- मिल्क मछली, चनॉस चनॉस के पिंजरा पालन के लिए सफलतापूर्वक प्रौद्योगिकियाँ विकसित की गई।
- मिल्क मछली के साथ झींगा तथा मूल्लेट्स व पर्लस्पॉट के साथ झींगा के मिश्रित पालन से उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए।
- मछली/झींगा-सह-मुर्गीपालन के लिए कम लागत संघटित कृषि तकनीकियों को विकसित किया गया।
- परामर्श कार्यक्रम के रूप में एम.पी.ई.डी.ए. के अधीन राजीव गांधी जलकृषि केन्द्र मैलाडुदुरै के लिए सफलतापूर्वक सीबास मत्स्यशाला प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन किया गया।

3. पोषण, शरीर विज्ञान तथा रोग विज्ञान अनुभाग

- झींगा की केंडिडेट जातियों जैसे *पी. मोनोडान* व *पी. इंडिकस* की पोषण आवश्यकता पर डेटाबेस तैयार किया गया।
- लघु पैमाना झींगा आहार की प्रक्रिया व उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किया गया। *पी. इंडिकस* तथा *पी. मोनोडान* के डिम्भकोत्तर पोषण के लिए सूक्ष्म विविक्त आहार के उत्पादनार्थ एक अन्य प्रौद्योगिकी पेकेज भी विकसित किया गया।
- सीबास पोनों के पोषणार्थ आहार (स्वदेशी आहार तत्वों का उपयोग करके) विकसित किया गया।
- आहार समावेशक के रूप में -केरोटीन के उपयोग से झींगों के विकास तथा उनके आहार परिवर्तन अनुपात (FCR) में वृद्धि हुई।
- *पी. मोनोडान* में खाद्य मशरूम व ग्लुकाज़माइन का रोग निरोधक प्रेरक के रूप में उपयोग के सकारात्मक निष्कर्ष प्राप्त हुए।
- मुत्तुकाडु में पानी से विविक्त सूडोमोनास स्ट्रेन, पी. मोनोडान में सकारात्मक पूर्वजीवीय क्रियाशीलता दर्शाता है।
- कृषक तालाबों में *पी. मोनोडॉन* के विकास में वृद्धि तथा स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए संस्थान द्वारा विकसित *विब्रियो* आधारित रोग निरोधक प्ररकों के उपयोग का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया।
- झींगा रोग व झींगा स्वास्थ्य प्रबंधन के लिए एक प्रौद्योगिकी पेकेज विकसित किया गया।

4. आनुवंशिक तथा जीवप्रौद्योगिकी अनुभाग

- झींगों में वाइट स्पॉट रोग के निदानार्थ पालिमिरेज़ चैन रिएक्शन (PCR) का उपयोग करके एक सरल डी.एन.ए. पर आधारित निदान तकनीक विकसित की गई। रोग के आणविक निदान के मानकीकरण के लिए पी.सी.आर. प्राइमर का एक सेट विकसित किया गया। नेस्टेड पी.सी.आर. के व्यापारिक उत्पादन

व विपणन के लिए केखाजपासं. तथा बैंगलोर जीनी (Genei) प्रा. लि. द्वारा सहमति पत्र (Mou) पर हस्ताक्षर किए गए तथा माननीय श्री अजित सिंह, कृषि मंत्री, भारत सरकार ने 21 मार्च, 2002 को नई दिल्ली में इस किट का विमोचन किया।

- केकड़ा व महायिंगट (Lobster), वाइट स्पॉट विषाणु को/निरोगसूचक (Asymptomatic) परपोषी वाहक के रूप में कार्य करते हुए पाए गए।
- झींगा जीवाणु रोग के निदान ढूँढने के लिए निदान परीक्षण जैसे डॉट इम्यूनॉअसे (Dot Immunoassay) व एलिसा (Enzyme Linked Immunosorbent Assay) को मानकीकृत किया गया।

5. जलकृषि अभियांत्रिकी तथा पर्यावरण अनुभाग

- पर्यावरण पर झींगा कृषि के प्रभाव के लिए व्यापक स्तर पर शोध के आयोजन किए गए। तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश में व्यापक, अर्ध गहन तथा गहन झींगा कृषि के सर्वेक्षण किए गए तथा समाजार्थिकी व पर्यावरणीय प्रभाव को देखा गया।
- भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल झींगा तालाबों से गंदे पानी के निकास के लिए मानदण्ड विकसित किए गए।
- केरल, तमिलनाडु आंध्र प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल की गहन व पारंपरिक झींगा कृषि के मृदा व पानी के गुणों तथा उत्पादन विवरण पर डेटाबेस विकसित किया गया।
- *पी. मोनोडॉन* के लिए खारेपानी में भारी धातु तथा किटाणुनाशक के "उचित सुरक्षित स्तर" का आकलन किया गया।
- अम्लीय कृषि क्षेत्रों की अभिक्रिया के लिए प्रभावकारी व किफायती चूना पदार्थों की मात्रा का मूल्यांकन किया गया।
- उड़ीसा के मृदा व पानी की गुणवत्ता तथा वर्षा आधारित झींगा तालाबों के निर्माण पर अध्ययन किए गए तथा पी. मोनोडान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए सुझाव दिए गए। इस संबंध में उड़ीसा सरकार को विस्तृत रिपोर्ट पेश की गई।
- तमिलनाडु व आंध्र प्रदेश की झींगा कृषि जलाशय की रिसाव दर का आकलन किया गया तथा रिसाव के नियंत्रण में बायोक्रिट को प्रभावकारी पाया गया।
- झींगा जलकृषि के पर्यावरण पर प्रभाव के निर्धारण पर तैयार किए गए डेटाबेस की सहायता से संस्थान ने केन्द्रीय कृषि मंत्रालय तथा आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु सरकारों को खारेपानी में जलकृषि के लिए दिशा-निर्देशों व झींगा तालाबों से गंदे पानी के निकास के मानदण्ड के सूत्रीकरण में सहयोग प्रदान किया है।

6. विस्तार, आर्थिक तथा सूचना अनुभाग

- तटवर्ती राज्यों के विभिन्न वर्गों के कृषकों द्वारा अपनाई गई झींगा कृषि कार्यों का सर्वेक्षण किया गया तथा समाजार्थिकी परिस्थितियों व विस्तार की आवश्यकताओं का आकलन किया गया।
- देश के खारेपानी मत्स्य संसाधनों पर तीव्र कम्प्यूटरीकृत डेटाबेस सूचना प्रणाली का विकास किया गया।
- संस्थान द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में झींगा/मछली कृषि पर किए गए अनुसंधानों का लाभ पुस्तिकाओं के प्रकाशन, कृषक सभाओं, प्रदर्शनियों व प्रदर्शन कार्यक्रमों के द्वारा कृषकों तक पहुँचाया गया।
- शोध उपलब्धियों, विजुअल्स का इंटरनेट की सहायता से अन्य स्थानों से सम्पर्क इत्यादि विशेषताओं को सम्मिलित करते हुए केखाजपासं का एक नया वेबसाइट का ढाँचा तैयार किया गया।
- एन.ए.टी.पी. - आई.वी.एल.पी. के अधीन मध्यस्थता कार्यक्रमों (जैसे झींगा रोग निरोधक प्रेरकों, झींगा आहार, चावल पर जैव-महामारी नियंत्रण, लवणता सहनशील चावल की किस्म, चावल फसल में पावर छिडकाव, पी.एम.के. 1. एनुअल मोरिंगा तथा पूसा-6 बैंगन बीज) में महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए। ●

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण - एक झलक

पी.जे. जोसफ, एवं लीना टी.पी.
भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण, कोचीन, केरल

भारत की समुद्री मात्स्यिकी की प्रगति और विकास, भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण से गहरा संबंध रखता है। भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण (पूर्व डीप-सी फिशिंग स्टेशन/एक्स्प्लोरेटरी फिशरीज़ प्रोजेक्ट) भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के अधीन सबसे पुराना और बृहत मात्स्यिकी संस्था है। देश में आधुनिक मत्स्य-यानों, गिअर और मत्स्यन तरीकों का परिचय देने में इस संगठन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही भारतीय तट के समीप झींगा और मत्स्य का उपजाऊ क्षेत्र ढूंढने में और तलमज्जी मात्स्यिकी संसाधन के लिए 500 मी की गहराई तक एवं पेलेजिक और समुद्री संसाधन का सर्वेक्षण भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र में करने में भी इस संस्था का हाथ है।

इस संगठन की स्थापना 1946 में हुई थी जो डीप-सी फिशिंग स्टेशन के नाम से जाना जाता था।

इसका मुख्य उद्देश्य गहरे समुद्रीय मत्स्यन का विकास था जिससे खाद्य पदार्थ की वृद्धि हो जाय। 1974 में यह सर्वेक्षण संस्था की दर्जा प्राप्त किया और अन्वेषणात्मक मत्स्यन परियोजना (Exploratory Fisheries Project) के नाम से जाना गया। सभी बेस कार्यालयों को ऑफशोर फिशिंग स्टेशन के नाम से जाना जाता था। अन्वेषणात्मक मत्स्यन का उद्देश्य मत्स्यन क्षेत्र का निर्धारण, मत्स्यन प्रचालकों का प्रशिक्षण और गहरे समुद्री मत्स्यन की वाणिज्य संभावनाओं का परीक्षण था। समुद्री मात्स्यिकी क्षेत्र की बदलती विकसनशील ज़रूरतें और आर्थिक अनन्य क्षेत्र की घोषणा के संदर्भ मे इस संस्था की संरचना और कार्य में महत्वपूर्ण बदलाव लाया गया। 1983 में इसका पुनर्गठन किया गया और भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण को राष्ट्रीय संस्था का दर्जा दिया गया। 1988 में इसे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी संस्थान के रूप में पुनर्गठित किया गया। भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण देश के नोडीय मात्स्यिकी संस्था के रूप में उभर आया है और इसका प्राथमिक दायित्व है अनन्य आर्थिक क्षेत्र और समीपवर्ती क्षेत्रों में मात्स्यिकी संसाधन के अधिकतम उपयोग और सम्पूर्ण विकास के लिए उसका सर्वेक्षण और निर्धारण करना।

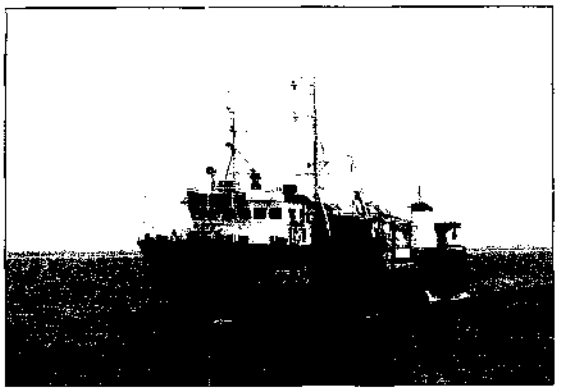

मिडवाटर पेलाजिक ट्रालिंग करनेवाला मत्स्यवर्षिनी पोत

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण का निर्धारित कार्य जो भारतीय समुद्री मात्स्यिकी के अधिकतम उत्पादन एवं संसाधन संरक्षण और पर्यावरण सुरक्षा के मद्देनज़र विनियमित कार्यक्रम के प्रोत्साहन के लिए की गई है, वे निम्न प्रकार है:

मत्स्य स्टाक का निर्धारण और सर्वेक्षण और भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र एवं समीपवर्ती क्षेत्रों में मात्स्यिकी क्षेत्र का चार्टिंग :-

मात्स्यिकी विनियमन, प्रबंधन और संरक्षण के लिए मात्स्यिकी संसाधन का मानीटरिंग।

अधिकतम सम्पूर्ण उपज, पर्यावरण का संरक्षण और समुद्री इकोसिस्टम के विशेष संदर्भ में समुद्री मत्स्यन गिअर

की उपयुक्तता का निर्धारण।

मात्स्यिकी प्रबंधन में सुदूर संवेदन के प्रयोग से समुद्री मात्स्यिकी की जानकारी उपलब्ध कराना।

गहरे समुद्र की मात्स्यिकी संसाधन के आंकडे रिकार्ड करना और प्राप्त सूचनाओं को विविध उपभोक्ताओं के बीच वितरित करना।

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण के वर्तमान क्रियाकलापों की रूप रेखा निम्न प्रकार है :-

1. **तटीय संसाधन की मानीटरिंग :**

तटीय क्षेत्रों में तलमज्जी संसाधन का सर्वेक्षण पूरा होने पर आधुनिक स्तर के स्टाक समुपयोजन शुरू की गई। यह संस्था भीतरी कॉंटिनेन्टल शेल्फ के स्टाक का नियमित रूप से मॉनीटरन करता है।

2. **गहरे समुद्री संसाधन का सर्वेक्षण :**

बाहरी कॉंटिनेन्टल शेल्फ में तलमज्जी स्टाक के सर्वेक्षण में काफी प्रगति होने पर भी इस क्षेत्र के संसाधन का समुचित निर्धारण करने के लिए ट्राल सर्वेक्षण जारी रखा है।

3. **तटीय पैलेजिक संसाधन का सर्वेक्षण :**

भारत के तटीय समुद्र के कुछ भागों में तटीय पैलेजिक स्टाक का मिड़वाटर ट्रालिंग और पर्स सीनिंग द्वारा प्रारंभिक सर्वेक्षण के बाद यह संस्था इस अधूरे काम को पूरा करने की कोशिश में है।

4. **कॉंटिनेन्टल स्लोप संसाधन का सर्वेक्षण:**

कॉंटिनेन्टल स्लोप के विविध भागों में गहरे समुद्र के क्रस्टेशियन और फिन फिश के कई स्टॉक की उपलब्धि को देखकर मुख्य भूभाग के चारों ओर कॉंटिनेन्टल स्लोप मे मौजूद ससाधन का वितरण और स्टाक डेन्सिटी का पूरा चित्र प्राप्त करने के लिए ट्राल सर्वेक्षण किया जाता है।

समुद्री ट्यूणा का संसाधन सर्वेक्षण :

भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र के विविध भागों में कुछ प्रधान ट्यूणा स्पीशीज़ की उपस्थिति की जानकारी प्राप्त हुई है विशेषकर येल्लो फिन ट्यूणा और बिल फिश। भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र और समीपवर्ती समुद्र म पैलेजिक स्टाक से संबंधित वैज्ञानिक जानकारी और वितरण के आधार पर विश्वसनीय आंकडे, सुलभता, प्रवासी प्रवृत्ति आदि उपलब्ध कराने के लिए ट्यूणा लांग लाइन सर्वेक्षण जारी रखा है।

6. **अंदमान निकोबार के संसाधन सर्वेक्षण :**

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण अब गहरे पानी में और कोंटिनेंटल स्लोप में तलमज्जी संसाधन का सर्वेक्षण कर रहा है और अनन्य आर्थिक क्षेत्र में पैलेजिक स्टाक के लिए लांग लाइन सर्वेक्षण किया जा रहा है

7. **अंटार्टिक क्रिल का अध्ययन :**

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण समुद्र विकास विभाग और अन्य देशीय और अंतर्देशीय संस्थाओं के साथ हिन्द महासागर क्षेत्र में क्रिल संसाधन पर अध्ययन शुरू किया है।

8. **परिस्थिति के अनुकूल और विविध तरह के मत्स्यन अभ्यास :**

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण, स्क्विड़ जिग्गिंग, पंजर मत्स्यन आदि परिस्थिति के अनुकूल एवं विविध मत्स्यन तरीकों की सहायता से प्रायोगिक मत्स्यन का काम शुरू किया है जिससे प्रौद्योगिकी और मत्स्यन गिअर का विकास और प्रगति किया जा सकें और जो समुद्री इकोसिस्टम को भौतिक और जैविक रूप से विकृत न करें।

9. **जैव विविधता की पहचान:**

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण भारतीय अनन्य आर्थिक

क्षेत्र में एक स्पोशीज़ इनवेन्टरी का निर्माण कर रहा है ताकि समुद्री जैव विविधता के अंशों को पहचान सकें।

10. जैविक अध्ययन :

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण संसाधन सर्वेक्षण के दौरान विभिन्न स्टाक से संबंधित जैविक आंकडे इकट्ठा करता है जिससे मात्स्यिकी संसाधन का निर्धारण किया जा सके। यह कार्य भारतीय अनन्य आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न विश्लेषणात्मक और निर्माण मॉडल द्वारा किया जाता है जो उष्णकटिबंधी मात्स्यिकी के लिए उपयुक्त होता है।

11. समुद्री मात्स्यिकी में सुदूर संवेदन का प्रयोग :

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण समुद्री मात्स्यिकी में सुदूर संवेदन के प्रयोग से संबंधित तकनीकी विकास के लिए भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन से जुड़ा हुआ है। अब क्लोरोफिल और समुद्र तल तापमान से संबंधित आंकडे के प्रयोग से समेकित मात्स्यिकी पूर्वानुमान के विकास पर प्रयास जारी है।

12. भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण के प्रारंभिक प्रयास से भारत के मशीनी मत्स्यन उद्योग की प्रगति में काफी प्रभाव डाला है।

समुद्री मात्स्यिकी के क्षेत्र में निम्नलिखित विकास के लिए भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण का योगदान है।

(I) विविध तरह के मत्स्य यानों और मत्स्यन गिअर के साथ प्रायोगिक/अन्वेषणात्मक मत्स्यन द्वारा भारत में बॉटम ट्रालिंग शुरू करना।

(II) पश्चिम बंगाल के समीप सेंडहेडस में झींगा मत्स्यन क्षेत्र निकालना।

(III) मत्स्य सुगंधी में विस्तृत अन्वेषणात्मक ट्यूणा लांग लाइनिंग द्वारा ट्यूणा मात्स्यिकी का विकास।

(IV) मत्स्य निरीक्षणी और मत्स्य वर्षिनी द्वारा उत्तर पश्चिम तट के समीप और मत्स्य शिकारी द्वारा ऊपरी पूर्व तट के समीप अद्भुतपूर्ण परिणाम के साथ मिड़वाटर/पेलेजिक ट्रालिंग प्रारंभ की गई।

(V) दोनों तटों पर मत्स्य वर्षिनी, मत्स्य दर्शिनी और मत्स्य हरिनी द्वारा पर्स सीनिंग प्रारंभ की गई।

(VI) कर्नाटक के समीप ट्यूणा संसाधन के आधिक्य की पुष्टि और पूर्व तट एवं अंदमान में इन संसाधनों की उपस्थिति।

गहन समुद्री संसाधन जैसे मैकरेल ओरिसा तट पर, नेमीटेरिड्स, बुल्स आई, ड्रिफ्ट फिश, स्काड, ग्रीन आई आदि भारतीय तट पर और गहन समुद्री झींगे और गहन समुद्री लॉबस्टर को केरल कर्नाटक और तमिलनाडु तट पर इनकी उपस्थिति की जगह ढूंढना।

बडे मत्स्य यानों में वास्तविक इनवेसल प्रशिक्षण उपलब्ध कराके समुद्री मत्स्य यानों में जाने के लिए प्रशिक्षण देना जिससे वाणिज्य समुद्री विभाग में उच्च प्रमाण पत्र मिल सके।

भारतीय मात्स्यिकी सर्वेक्षण के कोचिन बेस में कुल मिलाकर 108 कर्मचारी कार्यरत हैं जिनमें वैज्ञानिक, अभियंत्रिकी और प्रशासनिक कर्मचारी शामिल हैं। इस बेस का अध्यक्ष क्षेत्रीय निदेशक है।

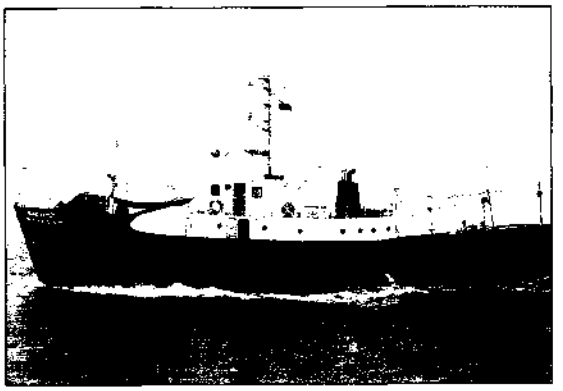

अन्वेषणात्मक ट्यूणा लाइनिंग करनेवाला पोत मत्स्य सुगंधी

मत्स्य विद्याशाखा, रत्नागिरी

डॉ. प्रकाश राजे,
मत्स्य महाविद्यालय, शिरगांव, रत्नागिरी, महाराष्ट्र

डॉ. बा.सा. कोंकण कृषि विद्यापीठ अंतर्गत मत्स्यविद्या शाखा की स्थापना सन 1971-72 में की गयी। इसी मत्स्यविद्या शाखा के अंतर्गत शुरु में केवल दो शोध केंद्र कार्यरत थे।

1) सागरी जीवशास्त्रीय शोध केंद्र, रत्नगिरी

2) तारापोरवाला सागरी जीवशास्त्रीय शोध केंद्र, मुंबई

जहाँपर मत्स्य एवं समुद्री जलचर प्राणीयो पर मूलभूत शोध किया जाता है। ये मूलभूत शोध एवं समुद्री शोध का लाभ जनसामान्यों तक पहुंचाने के उद्देश से इसी मत्स्य विद्याशाखा में मत्स्य महाविद्यालय की स्थापना 1981-82 में रत्नागिरी में की गयी। शुरू में यह महाविद्यालय, रत्नागिरी स्थित सागरी जीवशास्त्रीय शोध केंद्र, रत्नागिरी के परिसर में स्थित था। हालांकि, मत्स्य विज्ञान प्रणाली के विस्तार पर नजर रखते, महाविद्यालय के लिये स्वतंत्र आवास की जरुरत थी, इसलिये रत्नागिरी शहर के नजदीक ग्राम शिरगांव में स्वतंत्र आवास का निर्माण किया गया, जहाँ पर यह महाविद्यालय 1993 में स्थनांतरित हुआ।

मत्स्य विद्याशाखा स्थापन करने का मुख्य उद्देश्य

महाराष्ट्र राज्य भारत देश के पश्चिमी तटवर्तीय राज्यों में से एक है। राज्य की तटवर्ती सीमा 720 कि.मी. लंबी है। निसर्ग से प्राप्त इस तटवर्ती क्षेत्र का विकास करना, अधिकाधिक मछली का उत्पादन करना, और मछली संबंधी अधिक जानकारी विकसित करने के लिए इस महाविद्यालय की स्थापना की गयी। अतः विद्याशाखा स्थापना के प्रमुख उद्देश्य मछली संबंधित सभी क्षेत्रों में शोध करना, मछली के संबंध में अधिक से अधिक शिक्षा प्राप्त करना, शिक्षा का प्रसार करना, प्रसार मध्यमों की मदद से इस पायी गई शिक्षा का प्रसार महाविद्यालय से लेकर सामान्य जनसमुदाय की आर्थिक उन्नति एवं सामाजिक स्थिति सुधारने हेतु मछली संबंधी ज्ञान प्रदान करना, सामान्य जनसमुदाय को उत्तम दर्जे की मछली उपलब्ध करना, निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा कमाने हैं।

महाराष्ट्र राज्य के आंतर्जलीय एवं मीठापानी से संबंधित मत्स्य संवर्धन एवं तत्सम जातविधियों मे शोध शिक्षण एवं प्रसार भी इस विद्याशाखा का उद्देश्य है।

मत्स्य विद्याशाखा की कार्यप्रणाली

डॉ. बालासाहेब सावंत, कोकण कृषि विद्यापीठ की बनाई गई कार्यप्रणाली के अनुसार यह विद्यालय निम्नलिखित मैनडेट के तहत कार्य करता है।

इसी में तीन प्रमुख कार्यों का समावेश है:

1) मछली संबंधी अवश्यक सभी क्षेत्रों में शोध करना

2) मछली के बारे में आवश्यक सभी क्षेत्रों मे शिक्षा का विकास और प्रसार करना

मछली संबंधी आवश्यक जानकारी, एवं तत्सम तैयार की गई तकनीकों का सामान्य जनसमुदाय तक प्रसार करना एवं मत्स्य विज्ञान के बारे में यदि कोई शिकायत या तकनिकी समस्या है तो उसकी जाँच पडताल करके जनसमुदायों की सभी शंकाओं का दूरीकरण करना।

मत्स्य महाविद्यालय में उपलब्ध मानवशक्ति और संसाधन

महाविद्यालय का मुख्य, प्रिंसिपल है। ये सहयोगी अधिष्ठाता (असोसिएट डीन) के नाम से जाना जाता है। महाविद्यालय में छः विभाग उपलब्ध है और हर एक विभाग

में एक-विभाग प्रमुख, एक प्राध्यापक, दो सहयोगी प्राध्यापक, 3-4 सहायक प्राध्यापक के पद, है। इसके आलावा करीब 4 तकनिकी, 15 प्रशासनिक एवं 10 सपोर्टिंग कर्मचारी के पद है। मत्स्य विद्याशाखा के दो शोध उपकेंद्र है। महाविद्यालय के पास समुद्री प्रशिक्षण एवं अनुसंधान जलयान भी है। साथ ही पुस्तकालय, सभागृह, समितिकक्ष, कंप्यूटर कक्ष, संग्रहालय, लॉबोरेटरीज, छात्रावास, अतिथिगृह एवं कर्मचारी आवास भी है।

शिक्षा प्रणाली

मत्स्य महाविद्यालय के पूर्व स्नातक स्तर की प्रवेश क्षमता 20 है। यह बढाकर अब 40 की गई है। इसमें 10 प्रतिशत सीटें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, दिल्ली द्वारा आयोजित परीक्षा मे उत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित रखी जाती है। इसी महाविद्यालय में राष्ट्र के सभी राज्यों में से विद्यार्थी प्रवेश ले सकते है। कुछ राज्यों के विद्यार्थियों के लिये भी सीटें सुरक्षित रखी है। स्नातकपूर्व अभ्यासक्रम चार साल/आठ सत्रों का होता है और इसी दरमियान विद्यार्थियों को मत्स्य विज्ञान से अच्छी तरह से परिचित किया जाता है। अंत में, यशस्वी विद्यार्थियों को बी.एफ.एस्सी (बैचलर आफ फिसरीज साईन्स) पदवी प्रदान की जाती है।

महाविद्यालय शिक्षा प्रणाली मे स्नातक और स्नातकोत्तर अभ्यासक्रम का भी प्रावधान है। इसी के तहत, स्नानकोत्तर (मास्टर ऑफ फिशरीज साईन्स और पी.एच.डी.) की शिक्षा की सुविधा महाविद्यालय में उपलब्ध है। एम.एफ.एस्सी डिग्री दो विभिन्न विषयों में दी जाती है। एक है मत्स्यसंवर्धन (Aquaculture) और दूसरा है, मत्स्य प्रक्रिया एवं सूक्ष्म जीवशास्त्र (Fish Processing Technology & Microbiology)। सामान्यतः हर एक विषय मे छः विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष प्रवेश दिया जाता है। विद्यालय की विशेषताओं में से एक है पी.एच.डी. प्रोग्राम। मत्स्य संवर्धन विभाग में शोधकर्ताओं को पी.एच.डी. (एक्वाकल्चर) प्रदान की जाती है। एम.एफ.एस्सी कार्यक्रम मे भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा चुने गये विद्यार्थियों के लिये भी एक सीट उपलब्ध होती है। पी.एच.डी. शिक्षा के हेतू प्रति वर्ष तीन शोधकर्ता विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है।

शोध केंद्र

शोध, मत्स्य विद्याशाखा कार्यप्रणाली का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मत्स्य विद्याशाखा के अंतर्गत दो शोध केंद्र कार्यरत है, उनमें से एक केंद्र रत्नागिरी में ही है जो "सागरी जीवशास्त्रीय संशोधन केंद्र" के नाम से जाना जाता है। दूसरा शोध केंद्र, मुंबई में बांद्रा स्थित प्रशासकीय इमारत में है और उसे "तारापोरवाला सागरी जीवशत्रीय शोध केंद्र नाम से जानते है" यह शोध केंद्र महाराष्ट्र के मत्स्य विकास में अच्छा योगदान दे रहा है।

विस्तार शिक्षण

विश्व विद्यालय के प्रमुख कार्य के अनुसार तीसरा महत्वपूर्ण कार्य है मत्स्य शिक्षा का प्रसार। इस अंग में मछली संबंधी तैयार की नई तकनीक और उपलब्धियों का प्रसार सामान्य जनसमुदाय तक किया जाता है। मत्स्य विज्ञान संबंधी विविध क्षेत्रों में किये गये अनुसंधानों का प्रसार करना और सामान्य जनसमुदाय को उसी के बारे में जानकारी देना एवं तैयार की गई नई तकनिकों का उपयोग में लाने हेतू लोगों को प्रेरीत करने का काम विस्तार माध्यमों द्वारा किया जाता है।

शोध केंद्र एवं मत्स्य महाविद्यालय द्वारा किया गया शोध, सामान्य जनसमुदाय से परीचित करने के हेतु विविध कार्यशाला, फिशरमेन रैली, मत्स्यमेला, चर्चा सत्र, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर विविध व्याख्यान एवं प्रात्यक्षिक आयोजित किये जाते है ताकि लाभार्थी इसी तकनिकी का उपयोग आर्थिक, सामाजिक एवं पूरे देश की उन्नति के लिए कर सकें।

मत्स्य विद्याशाखा का उल्लेखनिय कार्य एवं शोध

1) संपूर्ण भारत में सबसे पहले, मीठे जल में उपलब्ध झींगा प्रजाति *मैक्रोब्राकीयम रोझनवर्गी* का कृत्रिम

बीजोत्पादन एवं समुद्री झींगा के चार प्रजातियों का कृत्रिम बीजोत्पादन।

2) शंबु और सीप के खाऱी जल में कृत्रिम संवर्धन की तकनिक तैयार की।

3) हरी शंबु (काकई) की लकडी की रापट की सहायता से इंटर-टाइडल ज़ोन में कृत्रिम संवर्धन की यशस्वी तकनिक तैयार की।

4) कम दर्जे की समुद्री मछली से मूल्यवान पदार्थ तैयार करने की कम खर्चीली तकनिक विकसित की।

5) वेलापवर्ती (पेलाजीक) मछली पकडने के लिये कोश संपाश (पर्ससिन) का रत्नागिरी तटवर्तीय क्षेत्र मे आविष्कार एवं तकनीकी का विकास

6) समुद्री घोडों का कृत्रिम पैदाइश एवं पैदाई तकनिक का विकास

7) कार्प हैचरी मॉडल का विकास

8) महाझींगा प्रजाति - *मैक्रोब्राकीयम रोझनवर्गी* की हैचरी का विकास

9) 'टाकावू मछली का उपयोग' योजने के अंतर्गत, स्थानीय बाजार में सस्ती अतः टाकावू समझने जाननेवाली कई मछली प्रजातियों का निदर्शन किया गया और इस निदर्शन में विशेषतः इन मछलियों का पृथः करण एवं मांस की उपलब्धि की जानकारी प्राप्त की गयी।

"फिश बॉल्स, फिश सेव, फिश वेफर्स, फिश फिंगर्स, फिश प्रॉन का अचार, केक, जवला चटनी" आदि वैविद्यपूर्ण पदार्थों की निर्मिति की जाती है।

10) यह विविध मत्स्यपदार्थ अध्ययन के साथ आमदनी योजने, के अंतर्गत छात्रों द्वारा बनाये जाते है और स्थानीय लोगों को बेचे जाते है। विविध कार्यशालाओं के द्वारा इस संसाधन की जानकारी स्थानीय लोगों को दी जाती है।

11) परिवहन के समय ताजी मछली के दर्जे में होनेवाले बदलाव की जानकारी तसली करने के लिये महत्वपूर्ण शोध किया गया ताकि उत्तम दर्जे की मछली बेचकर मछुवारों को अधिक फायदा मिल सके।

12) एकपेशीय शैवाल संवर्धन तकनीक का विकास। यह एकपेशीय शैवाल का उपयोग झींगे के बीजोत्पादन में महत्वपूर्ण खाद्यान्न के रूप में दिया जाता है।

13) स्थानीय क्षेत्रों में उपलब्ध सामग्री प्रयोग करके, झींगा संवर्धन के लिये कम दाम में पौष्टिक खाद्य निर्मिति की तकनीक विकसित की गयी।

14) मछुवारों को केंड (पफर) जाति की मछली द्वारा उपद्रव की समस्या सुलझाने के लिये महत्वपूर्ण शोध किया गया।

15) आलंकारिक मछली का प्रजनन एवं उत्पादन तकनीक का विकास किया गया। यह तकनीक विविध कार्यशाला एवं प्रशिक्षण वर्गों के द्वारा सुशिक्षित बेरोजगार युवकों को परिचित किया जाता है ताकि वे स्वयं रोजगार शुरु कर सकें।

16) जलजीवसंवर्धन के लिये उपद्रवी माने विषाणुओं के नियंत्रण तकनीक का विकास किया गया।

17) स्थानीय बाजार में उपलब्ध वस्तुओं के प्रयोग लंबी संवर्धन के लिये पौष्टिक एवं कम दामवाला खाद्यान्न निर्मिति की तकनीक के विकास के लिए किया गया।

मत्स्य विज्ञान का स्थानीय एवं निर्यात पणन में महत्वपूर्ण योगदान ध्यान में लेते हुए, महाराष्ट्र राज्य सरकार ने इस क्षेत्र में आधुनिक शोध, प्रशिक्षण एवं विस्तार शिक्षण कों बढावा देने के लिये महत्वाकांक्षी योजना सन 2001 से कार्यान्वित की है। 'कोंकण विकास कालबध्द कार्यक्रमांतर्गत डॉ. बालासाहेब सावंत कोंकण कृषि विद्यापीठ खारे पानी से मछलियों का प्रजनन एवं संवर्धन संबंधित अभ्यास किया जायेगा और इसी तंत्रज्ञान का प्रसार विविध प्रशिक्षण वर्गों द्वारा किया जायेगा। ●

प्रतिक्रियाओं से

माननीय डा. मोडयिल,

आपके द्वारा प्रेषित 'मत्स्यगंधा' राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक 2000 प्राप्त हुई। पत्रिका की सामग्री निश्चित ही महत्वपूर्ण और प्रभावी है। विशेषकर विज्ञान विषयों पर प्रेषित लेख इस बात के द्योतक हैं कि हिंदी में मात्स्यिकी जैसे विषय पर मौलिक लेखन करना अब सहज होता जा रहा है। निश्चित ही इस सफलता के पीछे आपके संस्थान का उल्लेखनीय योगदान है। भाग-I में कुछ रंगीन चित्र अवश्य दिये गये हैं जिससे प्रकाशन शुरूआत में ही प्रभावी लगता है। आवरण पृष्ठ भी विषय संगत है। कुल मिलाकर प्रकाशन अपने उद्देश्य में सफल है।

मैं आपको इस महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिए बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि भविष्य में हमें इस प्रकार के महत्वपूर्ण प्रकाशन अवश्य देखने को मिलेगें।

धन्यवाद सहित,

कुलदीप शर्मा
प्रधान संपादक (हिंदी) कृषि सूचना
एवं प्रकाशन निदेशालय, भा कृ अनु प

महोदय,

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'मत्स्यगंधा' स्वर्ण जयंती विशेषांक-2000 की प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद।

पत्रिका में आपके संस्थान द्वारा मात्स्यिकी अनुसंधान क्षेत्र में किए जानेवाले विभिन्न कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी शामिल करने का जो प्रयास किया गया है वह अत्यंत ज्ञानवर्धक प्रतीत हो रहा है। राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष के सिलसिले में इस तरह की एक उज्वल पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपके अधिकारी एवं कर्मचारी बधाई के पात्र है। मेरी कामना है कि भविष्य में भी राजभाषा के विकास की दिशा में आपका प्रयास सफल सिद्ध होगा।

सी.वी. पद्मनाभन
मुख्य आयकर आयुक्त, कोचिन तथा
अध्यक्ष, न.रा.भा.का.समिति, कोचिन

प्रिय महोदय,

आपके निदेशक द्वारा हमारे महा प्रबंधक के नाम पर भेजी गई हिंदी गृह पत्रिका के राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक 2000 की एक प्रति हमें सहर्ष प्राप्त हुई। धन्यवाद।

राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी ही नहीं, सीएमएफआरआइ के समस्त कार्यालयों के संपूर्ण कार्यकलापों का-परिचय इस गृह पत्रिका के द्वारा हमें मिला है। "विविधा" के "यादों की बारात में हिंदी "एक दम अनूठा एवं आकर्षक बना है। जो भी हो, यह पत्रिका आपके राजभाषा कार्यान्वयन कार्यों में अवश्य चार चाँद लगाती है।

कामना है कि आप हमेशा अग्रसर हो जाय।

के.ए. मनोहरन
उप प्रबंधक हिंदी,
एच एम टी लिमिटड

प्रिय महोदय,

राजभाषा स्वर्ण जयन्ती के विशेष उपलक्ष्य में आपके संस्थान द्वारा प्रकाशित राजभाषा स्वर्ण जयन्ती विशेषांक 2000- "मत्स्यगंधा" की एक प्रति इस निदेशालय को प्राप्त हुई। एतर्थ धन्यवाद! इस में कोई संदेह नहीं कि यह प्रकाशन प्रयोजन मूलक हिन्दी के प्रचार प्रसार में एक कदम आगे बढ़कर राजभाषा हिन्दी के बहुआयामी विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस में सम्मिलित किए गए वैज्ञानिक लेख, फोटोचित्र, मुख पृष्ठ सब कुछ अत्यंत आकर्षक हैं, जो वास्तव में सराहनीय एवं प्रशंसनीय हैं तथा अपना नाम भी अन्वर्थ करने वाले हैं। इस स्वर्णजयन्ती विशेषांक के सफल प्रकाशन के लिए मैं आपको एवं इस कार्य हेतु जुडे हुए सभी को अपनी बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि भविष्य में भी ऐसे कार्य करते रहें।

एम.एस. मोहन
प्रशासनिक अधिकारी, कृते निदेशक
काजू और कोको विकास निदेशालय

महोदय,

आपके संस्थान द्वारा प्रकाशित 'राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक -2000- मत्स्यगंधा' की एक प्रति प्राप्त हुई, इसके लिए साधुवाद। राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में आपने समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान से संबंधित हिन्दी में जो यह विशेषांक प्रकाशित किया है, निश्चित रूप से यह विज्ञान अनुसंधान को हिन्दी में लिखने की महत्वपूर्ण शुरूआत है। इसमें अनुसंधान संबंधी साहित्य के अतिरिक्त ललित साहित्य शामिल करने से इसकी उपयोगिता एवं आकर्षण में वृद्धि हुई है। उक्त विशेषांक के हिन्दी में प्रकाशित होने से समुद्र तट से हज़ारों मील दूर रहने वाले देश- वासियों को समुद्री मात्स्यिकी तथा वहाँ की संस्कृति संबंधी जानकारी मिली है। राजभाषा का प्रयोग किसी भी नागरिक के लिए गर्व की बात है। राजभाषा हिन्दी के प्रसार रूपी यज्ञ में आपका यह विशेषांक एक फलदायी आहुति के समान है। आपका यह सत्प्रयास सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। हमें विश्वास है कि आपके इस प्रकार के प्रयासों में भविष्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। हम आपके तथा आपके संस्थान के सम्पूर्ण परिवार के लिए मंगल कामना करते हैं।

सधन्यवाद!

राजवीर सिंह
निदेशक
केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान,
इज्जतनगर, यु.पि.

प्रिय प्रो. मोडयिल साहब,

राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में केन्द्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन से प्रकाशित राजभाषा स्वर्ण जयन्ती विशेषांक 2000 मत्स्यगंधा की एक प्रति मुझे प्राप्त हुई। इसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद।

नववर्ष की शुभकामनाओं सहित।

आपका
राजो सिंह
संसद सदस्य लोकसभा

महोदय,

आपका प्रकाशन मत्स्यगंधा प्राप्त हुआ। यह प्रकाशन पुस्तकालय में संदर्भ के लिए उपयोगी हैं। प्रकाशन के लिए धन्यवाद ! यदि संभव हो तो कृपया अपना प्रकाशन उपहार/ विनिमय आधार पर हमें भेजें।

सधन्यवाद

वरिष्ठ पुस्तकालयाध्यक्ष
केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान
भोपाल (म.प्र)

विषय :- **राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक 2000 "मत्स्यगंधा"।**

आप के कार्यालय के द्वारा प्रकाशित राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक 2000 "मत्स्यगंधा" की प्रति प्राप्त हुई। जिसके लिए धन्यवाद। इसके लेखकों और सम्पादकीय बोर्ड के सभी सदस्यों को साधुवाद।

के. ए. रहमत
वैज्ञानिक 'बी'
एन पी ओ एल

महोदय,

आपके संपादकत्व में प्रकाशित पत्रिका 'मत्स्यगंधा' का राजभाषा स्वर्णजयंती विशेषांक - 2000 प्राप्त हुआ है। धन्यवाद। पत्रिका में मुख्यालय एवं क्षेत्रीय कार्यालयों के संबंध में जो विवरण दिया है वह ज्ञानदायक है। समुद्री खाद्यपदार्थों के बारे में जानकारी एवं उनका रंगीन चित्र अत्यन्त आकर्षक लगा। भाग 111 में संकलित विभिन्न साहित्यिक रचनाएँ उच्च स्तरीय हैं।

शुभकामनाओं सहित,

मीरा सेन
हिन्दी अधिकारी
सी आइ एफ एन ई टी

महोदय,

आपके द्वारा भेजी गई राजभाषा स्वर्णजयन्ती विशेषांक "मत्स्यगंधा" की एक प्रति प्राप्त हुई। धन्यवाद।

विशेष उल्लेखनीय है कि साज-सज्जा में ही नहीं, अपितु पत्रिका के विषय वस्तु भी केवल राजभाषा कार्यान्वयन से संबंधित ही नहीं बल्कि संस्थान के अन्य क्षेत्रों में हो रहे गतिविधियों के दर्पण के रूप में उभरकर सामने आ रही है। पत्रिका के नाम से ही आप के संस्थान के कार्यकलापों की एक झलक मिलती है। पत्रिका के प्रकाशन से आपने यह साबित कर चुका है कि हिन्दी का प्रयोग केवल प्रशासनिक कार्यों में ही नहीं, बल्कि अन्य तकनीकी मामलों में भी संभव है। "यादों की बारात में हिन्दी" श्रीमती शीला पी.जे. सहायक निदेशक (रा. भा.) द्वारा पूर्ववर्ती निदेशकों से किये गये साक्षात्कार निःसंदेह प्रशंसनीय है।

इस पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी को, विशेष रूप से हिन्दी अनुभाग के सभी सदस्यों को, हार्दिक बधाई देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

एम. श्रीधरन
उपनिदेशक (रा.भा.)
दक्षिण क्षेत्र, बेंगलूर

परहित सरिस धर्म नहिं भाई

पर पीडा सम नहिं अधमाई

(दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को कष्ट पहूँचाने के समान कोई पाप नहीं है)

गोस्वामि तुलसीदास (रामचरितमानस)

दो सीपी

सीपी दोस्त सीपी से अपना दुःख बोला दोस्त! बहुत दिनों से मैं बहुत परेशान हूँ। कुछ न कुछ मुझे चुभा रहा है, यह पीर मैं आप से कैसे बताऊँ ? दूसरे ने उत्तर दिया। क्यों पीडा भई, मुझे देखो हमेशा चुस्त और मस्त। बातचीत सुनते रहे नाना केकडा बीच में आया और दुसरे से बोला। तू क्या जाने उनकी दरद का रहस्य, इनके अंदर रूप धारण कर रहा है दुनिया का अमूल्य रत्न मोती। जहाँ पीडा और घुटन होता है वहाँ जीवन सार्थक होता है।

- खलील जिब्रान की कहानी से साभार

दुनिया अमूल्य सुंदर रत्नों से भरपूर है और ये सब रत्न अंग्रेज़ी कारीगरी का परिणाम नहीं है। इस से बढकर कोई बडा भ्रम नहीं कि अमुक भाषा का विकास नहीं हो सकता अथवा इस में गूढ वैज्ञानिक विचार प्रकट नहीं किए जा सकते

(महात्मा गाँधी)

सी एम एफ आर आइ में हिंदी

क्या ?	और	कैसे ?

रोज़ हिंदी

- सीखें	प्रदर्शन बोर्ड
- लिखें	16000/- रु. की विशेष प्रोत्साहन योजना
- करें	जाँच बिंदुएं
- पढ़ें	दैनिकी, पत्रिकाएं, पुस्तकें
- देखें	हमारा वेब www.cmfri.com

हर तिमाही में हिंदी की/के

- प्रगति की निगरानी	राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठक का आयोजन
- प्रगति का आकलन	तिमाही प्रगति रिपोर्टों के पुनरीक्षण और कार्यान्वयन
- प्रगति का निरीक्षण	निरीक्षण समिति और उप समिति का गठन
- प्रयोग में बढ़ावा	कार्यशाला का आयोजन
- प्रयुक्ति का विकीर्णन	समुद्री मात्स्यिकी सूचना (एक द्विभाषी प्रकाशन)

हर छमाही में हिंदी.....से

- अनिवर्य प्रशिक्षण का सुनिश्चयन/	रोस्टरों के रखरखाव और प्रतिनियुक्ति से
- संसदीय राजभाषा समिति आश्वासनों का अनुपालन	निगरानी, निरीक्षण और अनुवर्ती कार्रवाई से
- आत्मीयता का बढ़ावा	सी एम एफ आर आइ समाचार के परिचालन से (एक द्विभाषी गृह पत्रिका)
- नगर में हिंदी का प्रचार	ना रा का स बैठकों में भागीदारी और सहयोग से

हर वर्ष हिंदी को

- वैज्ञानिक विषयों की प्रयुक्ति से संपन्न करें	हिंदी संगोष्ठी का आयोजन व कार्यवाही का प्रकाशन
- मात्स्यिकी लेखों की रचना से रजत करें	मत्स्यगंधा (एक मात्स्यिकी प्रकाशन)
- उच्च शिक्षा से जोड़ें	स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के शोध पत्र
- सूचना प्रौद्योगिकी से प्रवेग लाएं	लीप आफिस प्रशिक्षण और संदेह निवारण
- कृषि प्रौद्योगिकियों का औजार बनाएं	लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन व कृषक मेलाओं का आयोजन
- एक ऐतिहासिक घटना की याद व जागरण	हिंदी सप्ताह का आयोजन

हिंदी में पढिए, नीली क्रांति में हाथ बंटाइये

मात्स्यिकी ज्ञान के वातायन
ये हमारे प्रकाशन

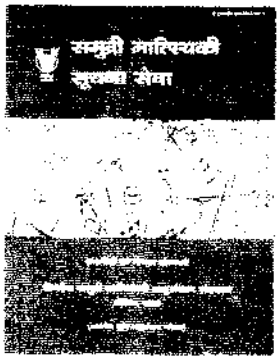

डॉ मोहन जोसफ़ मोडयिल, निदेशक द्वारा केंद्रीय समुद्री मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोचीन केलिए प्रकाशित
मुद्रण : निसीमा प्रिंटेर्स आन्ड पब्लिशेर्स, दूरभाष - 402948